June
2025

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

ज़िब्ह-ए-अज़ीम क्या है?

अल्लाह तआला ने हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) को उनकी ग़ैर मामूली आज़माइश का सिला यह दिया कि हज़रत इस्माईल (अलैहिस्सलाम) का फ़िदिया "ज़िब्ह-ए-अज़ीम" से दिया और यह ज़िब्ह-ए-अज़ीम महज़ यह नहीं है कि अल्लाह तआला की तरफ़ से जानवर ज़िबह करने का हुक्म हुआ था बल्कि यह "ज़िब्ह-ए-अज़ीम" अपनी जसामत के लिहाज़ से, अपनी क़ीमत के लिहाज़ से और अपनी शक्ल के लिहाज़ से है। वाक़्या यह है कि कोई शख़्स इसकी तादाद नहीं बयान कर सकता कि इस सुन्नत-ए-इब्राहीमी की तक़लीद में आजतक कितने जानवर ज़िबह किए जा चुके और आगे न जाने कितने किए जाएंगे। दुनिया में आंकड़ों का कोई विभाग और कोई बड़े से बड़ा इतिहासकार और कोई बड़े से बड़ा माहिर-ए-हिसाब भी यह नहीं कह सकता कि अब तक कितने करोड़ और कितने अरब जानवर ज़िबह हो चुके हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि यह "ज़िब्ह-ए-अज़ीम" अपने दवाम के लिहाज़ से भी, अपनी तादाद यानी कमियत के लिहाज़ से भी और अपनी कैफ़ियत के लिहाज़ से भी क़यामत तक रहेगा।

हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह०)

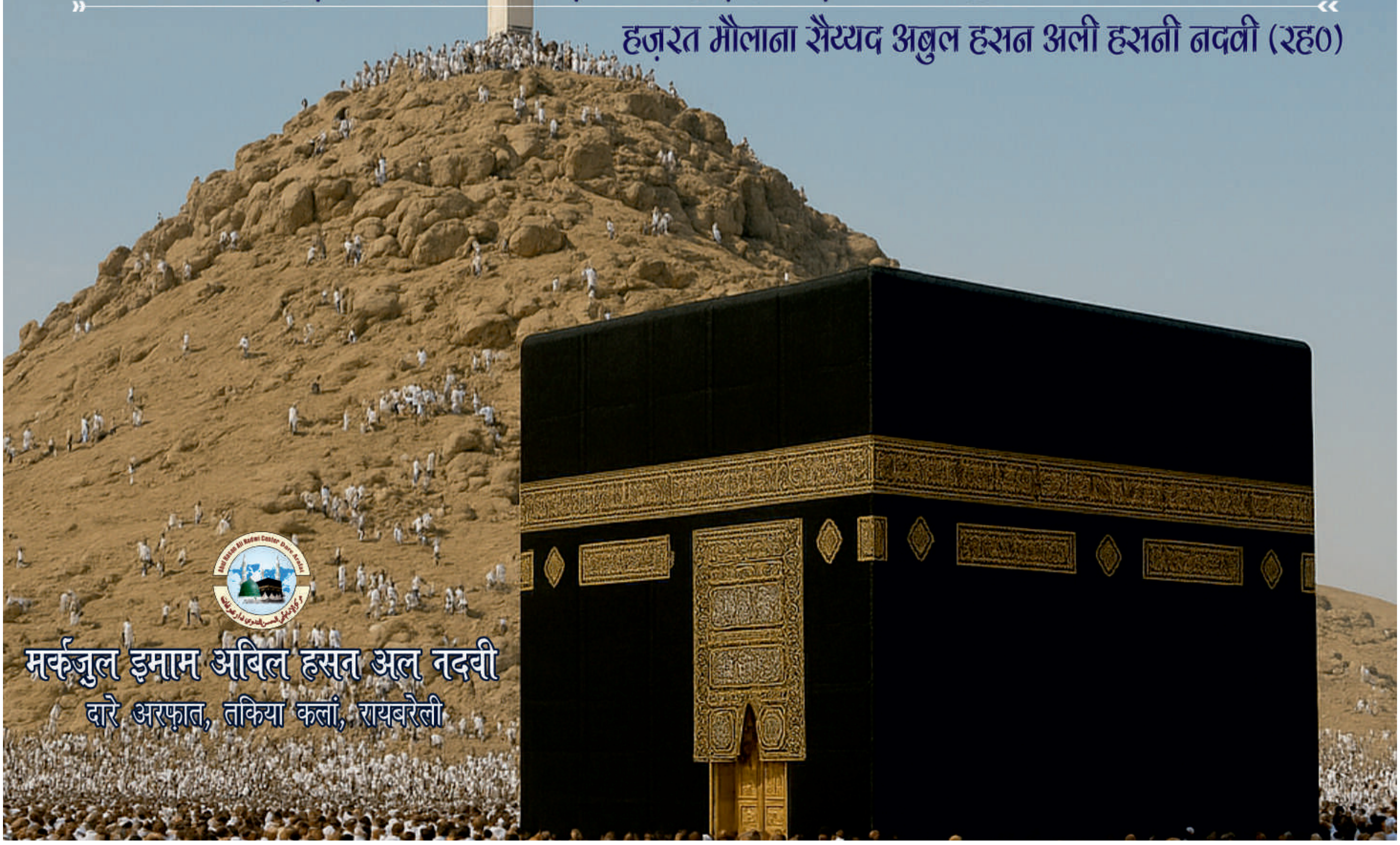

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल नदवी
दारे अरफ़ात, तकिया कलां, रायबरेली

कुर्बानी का तसव्वुर इस्लाम और दूसरे मज़हबों में

"कुछ मज़ाहिब में खुदा की सबसे पसंदीदा इबादत यह समझी जाती थी कि इंसान अपनी या अपनी औलाद की जान को चाहे गला घोंट कर या दरिया में डुबो कर या आग में जला कर या किसी और तरह से भेंट चढ़ा दे। इस्लाम ने इस इबादत का क़तई इस्तीसाल कर दिया और बताया कि खुदा की राह में अपनी जान कुर्बान करना अस्ल में यह है कि किसी सच्चाई की हिमायत में, या कमज़ोरों की मदद की ख़ातिर अपनी जान की परवाह न की जाए और मारा जाए, यह नहीं कि अपने हाथ से अपना गला काट लिया जाए, या दरिया में डूब मरा जाए या आग में अपने को जला दिया जाए। आप (स०अ०व०) ने फ़रमाया कि:

"जो शख़्स जिस चीज़ से अपने आप को क़त्ल करेगा, उसे जहन्नम में उसी चीज़ से सज़ा दी जाएगी।"

किसी जानदार की कुर्बानी करके खुदा की खुशनूदी हासिल करने का तरीक़ा अक्सर मज़हबों में राएज था। अरब में इसका तरीक़ा यह था कि लोग जानवर ज़िबह करके बुतों पर चढ़ा दिया करते थे। कभी ऐसा भी होता था कि मुर्दे की क़ब्र पर कोई जानवर लाकर बांध दिया जाता था और उसे चारा–घास नहीं दिया जाता था, वह इसी तरह भूख और प्यास से तड़प–तड़प कर मर जाता था। अहल–ए–अरब यह समझते थे कि खुदा ख़ून के नज़राने से खुश होता है। चुनांचे कुर्बानी ज़िबह करके इबादतघर की दीवार पर उसके ख़ून की छाप देते थे। यहूदियों में यह तरीक़ा था कि जानवर ज़िबह करके उसका गोश्त जला देते थे और उसके मुतअल्लिक़ वो जो रस्में अदा करते थे, उनकी तफ़सील कई पन्नों में भी नहीं समा सकती। उनका यह अकीदा था कि यह कुर्बानी खुदा की ग़िज़ा है। कुछ मज़हबों में यह था कि उसका गोश्त चील और कौवों को खिला देते थे।

पैग़ाम–ए–मोहम्मदी (स०अ०व०) ने इन सब तरीक़ों को मिटा दिया। इस्लाम ने सबसे पहले यह बताया कि इस कुर्बानी का मक़सद ख़ून और गोश्त की नहीं बल्कि तुम्हारे दिलों की ग़िज़ा है। फ़रमाया:

"खुदा के पास न इसका गोश्त पहुंचेगा और न इसका ख़ून, बल्कि उसे तुम्हारा तक़वा पहुंचेगा।" (सूरह अल–हज: ३७)

इस्लाम ने तमाम इबादतों में सिर्फ़ हज के मौके पर कुर्बानी वाजिब की है और अहल–ए–इस्तिताअ के लिए, जो हज पर न गए हों, मक़ाम–ए–हज की याद के लिए कुर्बानी मस्नून की गई है। ताकि उस वाक़्ये की याद ताज़ा हो। जब मिल्लत–ए–हनफ़ी के सबसे पहले दाई ने अपने ख़्वाब की ताबीर में अपने इकलौते बेटे को खुदा के सामने कुर्बान करना चाहा था और खुदा ने उसे आज़माइश में पूरा होता देख कर उसकी छुरी के नीचे बेटे की बजाए दुम्बे की गर्दन रख दी और उसके पैरवों में इस अज़ीमुश्शान वाक़्ये की सालाना यादगार क़ायम हो गई।

अल्लामा सैय्यद सुलेमान नदवी (रह०)

(सीरतुन्नबी: ५/२५–२६)

بِسْمِ اللهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

अंक: 6 जून २०२५ ई० वर्ष: 17

सम्पादकीय मण्डल

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

मुहम्मद हसन नदवी

सह सम्पादक

मुहम्मद मक्की हसनी नदवी

मुहम्मद अमीन हसनी नदवी

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

अनुवादक

मुहम्मद सैफ़

क़ुर्बानी की फ़र्ज़ियत

अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

"ऐ लोगो! बिलाशुब्ह हर (साहिब-ए-हैसियत) घर वालों पर क़ुर्बानी (अदा करना) ज़रूरी है।"

(मुसनद अहमद: 21247)

E-Mail: markazulimam@gmail.com www.abulhasanalinadwi.org

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल-नदवी दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली, यू०पी० 229001

मो० हसन नदवी ने एस० ए० आफसेट प्रिन्टर्स, मस्जिद के पीछे, फाटक अब्दुल्ला ख़ाँ, सब्ज़ी मण्डी, स्टेशन रोड रायबरेली से छपवाकर आफिस अरफ़ात किरण, मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल-नदवी, दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली से प्रकाशित किया।

Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi Samiti (Punjab National Bank) A/c No. 6127002100000339 (IFSC: PUNB0612700)

आसमान होगा सहर ...

नतीजा-ए-फ़िक्र: अल्लामा इक़बाल (रह0)

आसमान होगा सहर के नूर से आइना पोश
और ज़ुल्मत रात की सीमाब पा हो जाएगी
इस क़दर होगी तरन्नुम आफ़रीं बाद-ए-बहार
निगहते ख़्वाबीदा गुंचे की नवा हो जाएगी
आ मिलेंगे सीना-ए-चाकान चमन से सीना-ए-चाक
बज़्म-ए-गुल की हम-नफ़स बाद-ए-सबा हो जाएगी
शबनम अफ़्शानी मेरी पैदा करेगी सोज़ ओ साज़
इस चमन की हर कली दर्द आशना हो जाएगी
देख लोगे सुतवत-ए-रफ़्तार दरिया का मआल
मौज-ए-मुज़्तर ही उसे ज़ंजीर-ए-पा हो जाएगी
फिर दिलों को याद आ जाएगा पैग़ाम-ए-सुजूद
फिर जबीं ख़ाक-ए-हरम से आशना हो जाएगी
नाला-ए-स याद रसे होंगे नवा सामान तयूर
ख़ून-ए-गुलचीं से कली रंगीं क़बा हो जाएगी
आंख जो कुछ देखती है लब पे आ सकता नहीं
महव-ए-हैरत हूं कि दुनिया क्या से क्या हो जाएगी
शब गुरेज़ां होगी आख़िर जल्वा-ए-ख़ुर्शीद से
यह चमन मामूर होगा नग़्मा-ए-तौहीद से

इस अंक में:

ईद-ए-कुर्बां का पैग़ाम..3
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

ज़िबह-ए-अज़ीम की हक़ीक़त और इसकी मस्लहत.............4
हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह0)

ईद-उल-अज़्हा का पैग़ाम...6
हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी

तक़्वा क्या है?...8
बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

ईला के शरई एहकाम..10
मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

कुर्बानी का पैग़ाम..12
सैय्यद मुहम्मद अमीन हसनी नदवी

इस्लामी वक्फ़ और सरकार का आक्रामक रवैया..................14
मोहम्मद नजमुद्दीन नदवी

फ़लसफ़ा-ए-हज...17
मुहम्मद मुसअब नदवी बारह बन्कवी

कुर्बानी का वसीअ मतलब और आलमगीर पैग़ाम.................19
मुहम्मद अरमुग़ान बदायूँनी नदवी

सम्पादकीय

ईद-ए-कुर्बा का पैग़ाम

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

मिल्लत–ए–इब्राहीमी की सबसे बड़ी खुसूसियत यह है कि वह चंद मख़सूस अरकान व शआइर का नाम नहीं है बल्कि वह एक मुस्तक़िल दीन, मुस्तक़िल तहज़ीब और मुस्तक़िल शरीअत है। इसका सबसे बड़ा इम्तियाज़ यह है कि इसमें अकीदा–ए–तौहीद और इख़लास की रूह सबसे बढ़ कर कारफ़रमा है। यही वह चीज़ है जिसकी बुनियाद पर हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) मुश्किल से मुश्किल तरीन इम्तिहान व आज़माइश में भी खरे उतरे और उनका हर अमल हमेशा के लिए एक उस्वा बन गया।

सैय्यदना हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) की ज़िंदगी कुर्बानियों से भरी हुई है; जान की कुर्बानी, माल की कुर्बानी, अहल–ओ–अयाल की कुर्बानी, लेकिन इन कुर्बानियों की असल जान उनका ईमान और इख़लास है, जिनका इत्मिनान–ए–क़ल्ब मुशाहदा के दर्जे को पहुंच गया था। उनके इसी इख़लास का नतीजा था कि उनकी कुर्बानियां ज़िंदा व जावेद कर दी गईं और सिर्फ़ उन्हीं की नहीं, बल्कि उनके घरवालों की अदाओं को भी इबादत की शक्ल दे दी गई। ईद–ए–अज़हा की कुर्बानी भी दरअसल हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) की यादगार है, जब उन्हें हुक्म हुआ कि अपने फ़र्ज़ंद को अल्लाह के लिए ज़िबह करें। यह सबसे सख़्त इम्तिहान था कि बेटा भी इताअतशिआर, समझदार, ख़िदमतगुज़ार, और उसकी पेशानी पर सआदत के आसार ज़ाहिर हो रहे थे। मगर हुक्म–ए–खुदावंदी था, बेटा भी इसके लिए तैयार हो गया।

आज जहां पर लाखों कुर्बानियां की जाती हैं, हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) अपने बेटे को वहां ले गए, उलटा लिटा कर अपनी जानकारी में छुरी चला दी। बेटे की मोहब्बत अल्लाह की मोहब्बत के लिए कुर्बान कर दी गई और यही मतलूब था। अल्लाह का हुक्म हुआ, एक मेंढा फ़रिश्ता लेकर आया और इस्माईल (अलैहिस्सलाम) की जगह उसे लिटा दिया। हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) ने आंख खोली तो देखा कि मेंढा ज़िबह हो चुका है और बेटा क़रीब खड़ा मुस्कुरा रहा है। अल्लाह को उनकी यह कुर्बानी इतनी पसंद आई कि क़यामत तक मुसलमानों को हुक्म हुआ कि वह कुर्बानी करें।

"आज जो जानवर की कुर्बानी की जाती है, वह हक़ीक़त में उसी अज़ीम कुर्बानी की यादगार है। मक़सूद सिर्फ़ जानवर को कुर्बान कर देना नहीं है, बल्कि यह है कि मोहब्बत–ए–इलाही के आगे हर चीज़ की मोहब्बत कुर्बान कर दी जाए, हुक्म–ए–इलाही के आगे फिर कोई चाहत न रहे। ईमान वाला हर तरह की ख़्वाहिशों, रस्मों व आदतों से आज़ाद होकर एक अल्लाह के सामने सर–ए–तस्लीम ख़म कर दे। हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) से अल्लाह तआला ने जब फ़रमाया: {أَسْلِمْ} तो हज़रत इब्राहीम ने जवाब में कहा : {أَسْلَمْتُ لِرَبِّ الْعَالَمِينَ} असल मतलूब इसी ताअत और फ़रमां बरदारी का है। जान व माल, इज़्ज़त व आबरू सब उस ख़ालिक़ के आगे कुर्बान हैं और इम्तिहान उस वक़्त होता है जब एक तरफ़ हुक्म–ए–इलाही हो, फ़रमान–ए–नबवी (स0अ0व0) और दूसरी तरफ़ अंदर के तक़ाज़े हों। हर फ़िक्र व ख़्याल, ख़्वाहिशात और तक़ाज़ों को उसके आगे फ़ना कर देना असल कुर्बानी है।जब अल्लाह का हुक्म इस वक़्त जानवर की कुर्बानी का है, फिर इसके आगे अक़्ल लड़ाना और सोचना कि इससे बेहतर है कि किसी ग़रीब की मदद कर दी जाए। यह बड़ी ख़ाम ख़्याली की बात है और तफ़वीज़ के बरख़िलाफ़ है। हम हुक्म के पाबंद हैं और इसी का नाम बंदगी है और यही बंदगी राह–ए–नजात है।

ज़िबह-ए-अज़ीम की हक़ीक़त और इसकी मस्लहत

मुफ़क्किर–ए–इस्लाम हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह0)

हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सालम) के यहाँ बड़ी दुआओं और अरमानों के बाद बेटा हुआ। उन्होंने उसका नाम इस्माईल (अलैहिस्सालम) रखा। बेटे से बाप का ताल्लुक होता ही है। लेकिन बाप से बेटे का ताल्लुक उस वक़्त ज़्यादा बढ़ जाता है और उसमें बड़ी ताक़त पैदा हो जाती है, जब वह उससे ज़्यादा मिलता रहे। उसके साथ ज़्यादा वक़्त गुज़ारे और उसके साथ कुछ चलने फिरने लगे। यह फ़ितरी बात है कि जिसके साथ जितना वक़्त गुज़रता है, उसके साथ उतना ही रिश्ता होता है। जब तक लड़का माँ की गोद में है और माँ की निगरानी और क़फ़ालत में है, तब तक वही लिटाती है, उठाती है, बिठाती है और खिलाती है। इस वक़्त तक बाप से ज़्यादा माँ का ताल्लुक होता है और बाप कभी–कभी ही देखता है। बाप और माँ में एक फर्क तो यही है कि बाप हमेशा घर में नहीं रहता, हमेशा बच्चे की चारपाई के पास भी नहीं रहता और उस कमरे में भी हमेशा नहीं रहता बल्कि यह भी हो सकता है कि इस घर में भी हमेशा न रहता हो।

अल्लाह तबारक व तआला की यह हिकमत है कि कुरआन मजीद का कोई लफ़्ज़ ऐजाज़ से खाली नहीं। आयत में यह फ़रमाया गया किः "जब वह (बेटा) उनके साथ चलने फिरने के क़ाबिल हुआ।"

यानि अब बाप को बेटे की गिरवीदगी पैदा हुई कि हर वक़्त उसकी सूरत देखना, उसको प्यार करना और उस पर प्यार आना, उसकी भोली–भोली बातें सुनना और मोहब्बत का जोश पैदा हो जाना। और कभी–कभी बच्चा का बाहर साथ जाना कि अब्बा! हम भी साथ चलेंगे। अगर कभी घर से बाहर बाज़ार के लिए या थोड़े से फासले के लिए जाना हुआ तो उसका भी कभी उंगली पकड़ कर और कभी दामन पकड़ कर साथ चलना, गोया अब असली रिश्ता पैदा हुआ। ऐसे ही मौक़े पर आकर हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सालम) ने कहाः "ऐ मेरे बेटे! मैं देखता हूँ कि मैं तुझे ज़िबह कर रहा हूँ।"

इसमें अल्लाह तआला की हिकमत थी कि वही के ज़रिये से साफ़–साफ़ नहीं कहा गया। बहुत कम लोगों ने इस पर ग़ौर किया है। एक सूरत यह भी थी कि हज़रत इब्राहीम पर वही आती कि इस्माईल को कुर्बान कर दो और इसमें कोई गुंजाइश बाक़ी ही न रह जाती, लेकिन ख़्वाब का मामला ऐसा है कि आदमी उसकी ताबीर कर सकता है और यह सोच सकता है कि ख़्वाब तो ख़्वाब ही है मगर मोहब्बत व इख़लास के इज़हार का तक़ाज़ा यही है कि आदमी अल्लाह तआला के सामने बिल्कुल सर अफ़गंदा हो जाए, अपने को बिल्कुल हवाले कर दे, उसके हर इशारे को हुक्म समझे और उसके हर ईमा को नसीहत समझे, बल्कि उसके हर ईमा व इशारे को भी नसीहत–ए–सरीह का दर्जा दे, ताहम यह बड़ी मोहब्बत, इताअत–ए–कुल्ली और फ़िदवीयत को चाहता है।

इसमें शक नहीं कि हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सालम) के सामने इन्तिहाई मुश्किल और नाज़ुक मौक़ा था, यह वही बेटा था जो बड़ी दुआओं और अरमानों से पैदा हुआ था, इसको नबी आख़िरुज़्ज़मां का जद्द–ए–अमजद होना था और सच पूछिए तो हज़रत इब्राहीम पर किसी न किसी तरीक़े से यह राज़ मुनकशिफ़ भी हो गया था, मिस्ल मशहूर हैः "होनहार बिरवान के चिकने चिकने पात।"

यह बात बिल्कुल यक़ीन के साथ कही जा सकती है कि हज़रत इब्राहीम अपने फ़र्ज़न्द हज़रत इस्माईल (अलैहिस्सालम) के चेहरे को देखते ही समझ गए होंगे कि इनका नूर पूरी दुनिया में फैलेगा। सच पूछिए तो आज दुनिया में जो अक़ीदा–ए–तौहीद है और जो दीन–ए–हनीफ़ है और जो दीन–ए–सहीह है, उसकी तारीख़ हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सालम) पर तो ख़त्म होती ही है लेकिन उनके फ़र्ज़न्द हज़रत इस्माईल (अलैहिस्सालम) (हज़रत मुहम्मद (स0अ0व0) के जद्द–ए–अमजद) भी इस तारीख़ का एक अहम और बुनियादी किरदार हैं।

हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सालम) नबी थे, लेकिन अल्लाह की तरफ़ से इम्तिहान देखिए कि वह बेटा जो

बड़ी उम्मीदों के बाद पैदा हुआ, वह बेटा कि अगर दूसरे भी देखें तो उनका भी दिल करे कि उसे गले लगाएं, गोद में लें और उसके माथे को बोसा दें, ऐसा होनहार बेटा जिसके चेहरे से नजाबत, हुनहरी और तरक़्क़ी के आसार साफ़ नज़र आ रहे हों, जब वह हज़रत इब्राहीम के साथ चलने फिरने लगता है, उस वक़्त हुक्म–ए–इलाही होता है और इसके लिए भी ग़ैब से कोई साफ़–साफ़ आवाज़ नहीं आती, या कोई फ़रिश्ता आकर यह नहीं कहता कि आप अपने लख़्त–ए–जिगर को ज़बह कर दीजिए बल्कि ख़्वाब में यह दिखाया गया कि वह अपने बेटे को ज़बह कर रहे हैं। शायद अगर उनकी जगह कोई दूसरा होता तो वह यही कहता कि भाई! ख़्वाब का क्या एतबार है, ख़्वाब तो हर तरह के दिखाए देते हैं, महज़ ख़्वाब की बुनियाद पर इतना बड़ा काम कि बेटे को ज़िबह कर दें, यह मुमकिन नहीं है। लेकिन यहाँ तो मामला ही एक आशिक़–ओ–माशूक़ और एक मुहिब्ब–ओ–महबूब के दरमियान था। यह मामला अल्लाह और ख़लीलुल्लाह के दरमियान था। वाक़्या यह है कि अल्लाह और हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सालम) के दरमियान जो तअल्लुक़ है वह तअल्लुक़ हर दो के दरमियान नहीं होता।

अजीब बात यह है कि इस वाक़्ये में एक–एक चीज़ ऐज़ाज़ की है। दुनिया में ऐसा कहीं नहीं होता कि कोई किसी के मुतअल्लिक़ बुरा इरादा करे और फिर उसीसे यूँ कहे कि हमने तुम्हें बहुत दिनों से मारा नहीं है, आज तुम्हें मारने को जी चाहता है। ज़ाहिर है इस तरह कोई किसी से नहीं कहता, यहाँ तक कि एक तजुर्बेकार उस्ताद भी ऐसा नहीं कहता, सिवाय इसके कि कोई आदमी ख़्वाब की बुनियाद पर किसी से ज़िबह करने की बात कहे। लेकिन हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सालम) इस हक़ीक़त को जानते थे कि इस बच्चे के सामने इस बात को बताने में डरने की कोई ज़रूरत नहीं, इस लिए कि इसके ज़रिये से पूरी दुनिया में अक़ीदा–ए–तौहीद और दीन–ए–ख़ालिस फैलेगा। गोया उनको उसी वक़्त यह अंदाज़ा हो गया था कि यह बच्चा इस बात से नहीं घबराएगा। गरच यह बात किसी तफ़्सीर में नहीं लिखी है लेकिन यह खुद आदमी अपने क़यास–ओ–तजुर्बे से समझ सकता है। हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सालम) ने बेख़ौफ़ होकर कहा:

"ऐ मेरे (लाडले) बेटे! मैं देख रहा हूँ (बार–बार देख रहा हूँ) कि मैं तुझे ज़िबह कर रहा हूँ। तो बताओ कि तुम्हारी राय क्या है?"

सच्ची बात यह है कि अगर हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सालम) को इस बात का इत्मिनान न होता कि मेरा बेटा इस हुक्म के आगे फ़ौरन सर–ए–तस्लीम ख़म कर देगा, तो शायद वह उनसे यह सवाल कभी न पूछते। इस लिए कि कोई ऐसी बात जिसकी निस्बत खुदा की तरफ़ हो और जिसका खुदा की तरफ़ से इशारा हो, उसमें आदमी मशवरा नहीं करता। बल्कि ऐसी सूरत में मशवरा उसी वक़्त करता है जब उसको सौ फ़ीसद यह यक़ीन हो कि वह खुदा के हुक्म के सामने सर–ए–तस्लीम ख़म करेगा। इसी लिए हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सालम) ने फ़रमाया: बेटा! अजीब बात है मैं ख़्वाब में बार–बार देख रहा हूँ कि मैं तुम्हें ज़िबह कर रहा हूँ। तो बताओ कि तुम्हारी क्या राय है? ज़ाहिर है यह बड़ी आज़माइश का मौक़ा था, लेकिन फ़रमाबरदार फ़र्ज़न्द ने जवाब दिया:

"अब्बाजान! इसको आप कर गुज़ारिए जिसका आपको हुक्म दिया जाता है, मुझे आप देखेंगे मैं सब्र करने वालों में से हूँ।"

गोया हज़रत इस्माईल (अलैहिस्सालम) ने ज़बान–ए–हाल से यह कहा कि ऐ अब्बाजान! मुझे तअज्जुब है कि इतने बड़े पैग़म्बर होने के बाद आप मुझसे पूछते हैं? यह कोई पूछने या कहने की बात ही नहीं है। और चूँकि आप ने मुझसे यह बात पूछी है, इस लिए कह रहा हूँ वरना यह कहने की ज़रूरत भी नहीं थी बल्कि आप खुद ही देख लेते कि मैं किस तरह सब्र कर रहा हूँ।

असल मक़सूद हज़रत इस्माईल (अलैहिस्सालम) को ज़िबह कराना नहीं था, बल्कि हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सालम) को अपने बेटे से जो मोहब्बत पैदा हो गई थी, उसमें इस बात का इम्कान और शक का यह मौक़ा था कि कहीं वह मोहब्बत खुदा की मोहब्बत का हमसर न हो और उसके सामने बाज़ औक़ात अवामिर–ए–इलाही पर अमल मुश्किल न हो, इस लिए उसको ज़िबह करना ज़रूरी था। और जब उन्होंने खुदा के लिए उनके गले पर छुरी रख दी तो वह मोहब्बत ज़िबह हो गई और हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सालम) की तरफ़ से इसमें कोई कसर बाक़ी न रही। लेकिन इसमें शक नहीं कि यह बहुत बड़ी आज़माइश थी, शायद ही इतनी बड़ी आज़माइश इस से पहले हुई हो।

ईद-उल-अज़्हा का पैग़ाम

हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी (रह0)

हर मज़हब और हर क़ौम में कुछ मख़सूस अय्याम जश्न और त्योहार की हैसियत रखते हैं जो अपने अंदर अपने मानने वालों के लिए ख़ुशी और मुसर्रत लिए होते हैं, जिन्हें इंसान अपनी ज़िंदगी के मुसर्रत आ गईं, सुरूर आमेज़ और लज़ीज़ तरीन अय्याम शुमार करता है। ये अय्याम क़ौमी और मिल्ली ऐसी यादगारों से वाबस्ता होते हैं जो इंसान को जज़्बात–ए–ख़ुशी व मुसर्रत के इज़हार पर आमादा करते हैं, जो उनके जज़्बात व एहसासात से हमआहंग होती है।

इस्लाम और मुसलमानों के अलावा दीगर अदयान व मज़ाहिब और अक़्वाम में ऐसे त्योहारों की तादाद बहुत है, उनके यहाँ हर छोटा बड़ा वाक़्या त्योहार की हैसियत रखता है, लेकिन इस्लाम में ईद जैसी ख़ुशी मनाने के लिए सिर्फ दो मौक़े रखे गए हैं। इन दो ईदों के अलावा जो दीगर मौक़े हैं उन्हें अल्लाह तआला ने कुछ तक़ाज़ों और ख़ुसूसियतों से मर्बूत बनाया है। ये तक़ाज़े इंसानी ज़िंदगी के नशीब व फ़राज़ को समझने और उनसे अपने को हमआहंग बनाने से ताल्लुक रखते हैं, जैसे रमज़ान का महीना जिसमें खाने पीने और बहुत सी उन हलाल चीज़ों से रुकना पड़ता है जो रमज़ान के अलावा और दिनों में हलाल हैं। ये पाबंदी दिन भर के लिए एक माह तक रहती है। इस पाबंदी में एक निहायत नेक इंसानी जज़्बा कार फ़रमा होता है क्योंकि रोज़ेदार इंसान अपने को एक महीना तक रोज़ाना दिन भर के लिए ग़िज़ा से महरूम इंसानों के ज़ुमरे में दाख़िल कर लेता है और इस तरह वह बदनसीब और महरूम इंसानों की परेशानीयों और मुसीबतों से ख़ुद अमली तौर पर गुज़र कर वाक़फ़ियत हासिल करता है, उसकी ये वाक़फ़ियत अमली और मुशाहिदा वाली होती है, सुनी सुनाई और दूर की नहीं होती।

ये दो ईदें जो अल्लाह ने मुसलमानों को मरहमत फ़रमाई हैं, उनमें से एक तो ‘ईदुल फ़ित्र’ कहलाती है जो रमज़ान का महीना पूरा होते ही आती है, जिसे रोज़ेदार अपने परवरदिगार की रज़ा जोई के लिए इबादत व रियाज़त और मुजाहदा में गुज़ारता है और खाने पीने और मरग़ूब व हलाल अशिया के इस्तेमाल से रुक कर एक तरह से मशक्कत के साथ और अपने जैसे दूसरे बहुत से बदनसीब और इंसानी सहूलतों से महरूम इंसानों के एहसासात व शुऊर में शरीक होकर गुज़ारता है। पूरा एक महीना इन कामों में गुज़ारने के बाद ईद के रोज़ रोज़ों की पाबंदियों से आज़ाद हो जाता है और अपने परवरदिगार की रज़ा और ख़ुशी के हुसूल के साथ–साथ एक बड़ा क़लबी सुकून व राहत भी महसूस करता है।

दूसरी ईद ईदुल अज़्हा कहलाती है जो ईदुल फ़ित्र के दो माह दस दिन बाद आती है। ये अपने साथ क़ुर्बानी और जाँ–सुपारी की यादों की वो सौगात भी लाती है जो अबुल–अंबिया हज़रत इब्राहीम अ. ने अपने रब के हुज़ूर में पेश की थी और जो क़ुर्बानी और जाँ–निसारी की शानदार मिसाल थी। उन्होंने अल्लाह के लिए ये क़ुर्बानी कई चीज़ों की दीरू वतन की मोहब्बत, बीवी की मोहब्बत और शीरख़्वार बच्चे की मोहब्बत। इन सबकी क़ुर्बानी दी। अव्वलन अपना महबूब वतन छोड़ा, फिर अपने दो महबूब ताल्लुक़ वालों यानी बीवी और बेटे को महज़ अपने रब के हुक्म की बजा आवरी में एक दूर के बे–आब व गया सहरा में ले जाकर छोड़ा और जब उनसे इसकी बाबत पूछा गया तो जवाब दिया कि अल्लाह का यही हुक्म है और ये उसके हुक्म की तामील में है।

उनकी इस अज़ीम क़ुर्बानी को अल्लाह तआला ने क़बूल फ़रमाया और क़यामत तक के लिए इसको ज़िंदा–जावेद और यादगार बना दिया और मुसलमानों को हुक्म दिया कि वो इस क़ुर्बानी को हमेशा याद रखें, हर साल इसकी याद मनाएँ और इसकी क़द्र शनासी के इज़हार का एहतिमाम करें और इससे मुशाबहत रखने वाली क़ुर्बानी पेश करके हमावक़्त इस क़ुर्बानी को अपने ज़ेहन व दमाग़ में मुस्तहज़र रखें और इस अज़ीमुल

मर्तबत इंसानी शख्सियत के साथ अपने ताल्लुक़ व इंतिसाब पर अल्लाह का शुकर अदा करें। इस तरह ये दिन रबुल–आलमीन के सामने अपनी अब्दियत और बंदगी के इज़हार और इसमें कामयाबी पर खुशी मनाने का दिन है।

ईदुल अज़हा के ये चंद मख़सूस अय्याम इस बात के बजा तौर पर मुस्तहक़ हैं कि अहले ईमान इनकी खुशी मनाएँ और ये खुशी उनके क़ाएद व रहबर और इमामे अकबर हज़रत इब्राहीम अ. की अपनी अब्दियत के इज़हार और रबुल–आलमीन के हुक्म के सामने सर तस्लीम ख़म कर देने के बजाय इम्तेहान में कामयाबी की खुशी है। चुनांचे अल्लाह तआला ने इन अय्याम को खुशी व मुसर्रत के अय्याम क़रार दिया है और इस क़ुर्बानी की याद में उसके मक़ाम मक्का मुकर्रमा जाने और बाश्ज़ ज़ाहिरी शक्लों में इस अज़ीम वाक़िआ से अपने ताल्लुक़ के इज़हार को मशरू किया है जिसे शरीअत की इस्तिलाह में ष्हजष करना कहते हैं।

इस फ़रीज़ा की अदायगी की इस्तेताअत रखने वाला मोमिन बंदा इस अज़ीम तारीखी मक़ाम की तरफ़ आशिक़ाना और वालिहाना अंदाज़ में जाता है और उसकी ज़बान पर मलकूती और लाहूती नग्मा होता हैरू

लब्बैक अल्लाहुम्म लब्बैक, लब्बैक ला शरीक लक लब्बैक, इन्नल–हम्द वन्निश्मत लक वल–मुल्क, ला शरीक लक

वो बार–बार इसे दोहराते हैं और तीन दिन इन मुक़द्दस जगहों पर गुज़ारते हैं। ईद–उल–अज़्हा के दिन और इसके अगले दो दिन, खाने–पीने और इबादत में मशगूल रहते हुए इस अज़ीम क़ुर्बानी की याद मनाते हैं। इससे उनके दिल में एक अजीब सुकून और खुशी पैदा होती है। ये दोहरी खुशी होती है, अल्लाह की रज़ा भी और ईद की खुशी भी। हाजी वहाँ से लाए हुए रूहानी सरमाया (आध्यात्मिक ऊर्जा) से अपने दिल को रोशन करता है।

बैतुल्लाह शरीफ़ दुनिया के तमाम बुतख़ानों के मुक़ाबले पहला घर है जिसे हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) ने अपने रब की इबादत के लिए बनाया। यह घर मुसलमानों के लिए अम्न और सुकून की जगह है। वहाँ पहुँचने वाला हर इंसान अपने दिल में अल्लाह के नूर से सराबोर हो जाता है। जो वहाँ नहीं पहुँच सकते, वो अपने घरों में ही इस याद को ताज़ा करते हैं, क़ुर्बानी कर के, ईद की नमाज़ पढ़ के और दिल से इस दिन की अहमियत को महसूस कर के। वो अल्लाह का शुक्र अदा करते हुए अपने घरों से निकलते और लौटते हुए बार–बार ये तकबीरें पढ़ते हैं:

"अल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर, ला इलाहा इल्लल्लाह, वल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर, व लिल्लाहिल हम्द।"

इसी क़ुर्बानी की याद की वजह से इसे "ईद–उल–अज़्हा" कहा जाता है। इस दिन मुसलमान अपने रब के हुक्म की तामील में क़ुर्बानी करता है और "लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक" कहता हुआ उस ख़ास घर (काबा) से अपनी मोहब्बत का इज़हार करता है दृ वो घर जिसे हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम और उनके प्यारे बेटे ने अल्लाह के हुक्म से तामीर किया। उसी के पास मिना में उन्होंने अपने बेटे की मोहब्बत की क़ुर्बानी दी थी। अल्लाह ने इस क़ुर्बानी को क़ुबूल किया और क़यामत तक के लिए इसे यादगार बना दिया। अल्लाह ने अपने नबी से कहा कि लोगों को इस घर की तरफ़ बुलाओ:

"और लोगों में हज की मुनादी कर दो। वो पैदल भी आएँगे और दुबली–पतली ऊँटनियों पर भी जो दूर–दूर से चल कर आएँगीं दृ ताकि वो अपने फ़ायदे की चीज़ें देखें और मुक़र्रर दिनों में उन जानवरों पर अल्लाह का नाम लें जो उसने उन्हें दिए हैं। फिर उस में से खुद भी खाओ और मुहताज–ओ–ग़रीब को भी खिलाओ। फिर उन्हें चाहिए कि वो अपनी नज़रें पूरी करें और उस पुराने घर (काबा) का तवाफ़ करें।"

यह सब काम एक खुशगवार, मुसर्रत से भरी फ़िज़ा में अंजाम दिए जाते हैं। इस तरह, ईद–उल–अज़्हा हाजी और वतन में रहने वाले मोमिन दोनों के लिए एक बेहतरीन और अज़ीम ईद बन जाती है। हाजी तवाफ़ करता है, सफा–मरवा की सई करता है, और वतन में रहने वाला दो रकअतें पढ़ कर क़ुर्बानी करता है और इस याद को ताज़ा करता है।

मुबारक हो हाजियों को हज और तमाम मुसलमानों को ईद–उल–अज़्हा!

तक़वा क्या है?

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

हुस्न–ए–अख़्लाक़ के तीन मराहिलः

"अच्छे अख़लाक़ के साथ लोगों से पेश आओ।"

हदीस में है कि लोगों के साथ अच्छा बर्ताव करो। अख़लाक़ के सिलसिले में अक्सर बड़ी ग़लतफ़हमी होती है। अख़लाक़ सिर्फ ये नहीं है कि आदमी ज़ाहिरी तौर पर अच्छे चेहरे और खुशमिज़ाजी से मिले, यक़ीनन ये अख़लाक़ का एक बड़ा हिस्सा है, लेकिन सिर्फ यही अख़लाक़ नहीं है। अख़लाक़ में "कफ़–उल–अज़ा" भी शामिल है यानी किसी को अपनी वजह से तकलीफ़ न पहुँचे। अगर किसी को उससे तकलीफ़ हो रही है और फिर भी वो बहुत बाअख़लाक़ भी नज़र आ रहा है तो ये अख़लाक़ नहीं है, बल्कि ये अख़लाक़ का दिखावा है। हक़ीक़त में अख़लाक़ तब होगा जब पहला मरहला ये तय हो कि उससे किसी को कोई तकलीफ़ न पहुँचे। अख़लाक़ का दूसरा मरहला "बस्त–उल–वजह" है यानी जो किसी को तकलीफ़ नहीं पहुँचा रहा, वो अख़लाक़ भी इख़्तियार करे, लोगों से खुशमिज़ाजी से मिले, अच्छे अख़लाक़ से पेश आए और मुस्कराकर मिले, जिसका हदीस में कई जगह ज़िक्र आया है। एक जगह फ़रमाया किः

"तुम अपने भाई से खुशमिज़ाजी से मिलो।"

इस हदीस में अच्छे चेहरे और मुस्कराकर मिलना सदक़ा बताया गया है और ये भी अख़लाक़ का एक बड़ा हिस्सा है। हासिल ये कि आदमी की ज़ात से किसी को तकलीफ़ न हो और वो जिससे भी मिले तो खुशमिज़ाजी से मिले।

हालाँकि अख़लाक़ का दायरा सिर्फ यहीं तक महदूद नहीं है, बल्कि अख़लाक़ में "बज़्ल–उल–म'रूफ़" भी शामिल है यानी आदमी ज़रूरतमंदों के काम आए, वो लोगों की जो भी ख़िदमत कर सके वो करे और दूसरों की राहत का ज़रिया बने। जब ये तीनों बातें होंगी तब अख़लाक़ की तकमील होती है।

आम तौर पर होता ये है कि हम अख़लाक़ का मज़ाहरा तो खूब करते हैं, मगर इसकी हक़ीक़त नहीं होती। जैसे एक जगह हदीस में कहा गया कि एक वक़्त आएगा जब लोगों का ये हाल हो जाएगारू

"उनकी ज़बानें शहद से भी ज़्यादा मीठी होंगी, लेकिन उनके दिल भेड़ियों के दिल होंगे।"

ऐसे लोग जब बात करेंगे तो लगेगा जैसे फूल झड़ रहे हैं, तक़रीर करेंगे तो माशा अल्लाह बड़ी शानदार होगी, आपसी मजलिस में बातचीत होगी तो सब वाह–वाह करेंगे! लेकिन दिलों के अंदर पता नहीं क्या–क्या भरा होगा। उनके दिल भेड़ियों के जैसे होंगे। बस यही चाहेंगे कि किसी तरह हमें फ़ायदा पहुँचता रहे, हम उनकी जेबें खाली करवा लें या दिल चीरकर सब कुछ निकाल लें, जो भी हो हमें मिल जाए। तो ये आख़िरी दर्जे की बद–ख़ुल्की है।

अख़लाक़ ये है कि आदमी दूसरों को फ़ायदा पहुँचाए, दूसरों की राहत का ज़रिया बने। वो सिर्फ ज़बान से फ़ायदा न पहुँचाए और न ही सिर्फ ज़बान से अख़लाक़ दिखाए, बल्कि हक़ीक़त में दूसरों के लिए मुफ़ीद बने। उसके अंदर दूसरों को फ़ायदा पहुँचाने का मिज़ाज हो, यही असल अख़लाक़ है।

अख़्लाक़ का तक़ाज़ाः

इज्तिमाई (सामूहिक) ज़िन्दगी में इस अख़लाक़ को अपनाने के बहुत से मौके मिलते हैं। ख़ास तौर पर जिन घरों में जॉइंट फ़ैमिली होती है वहाँ बहुत मौके मिलते हैं। कई बार बहुत छोटी–छोटी बातों में आदमी धोखा खा जाता है। जैसे कहीं एक जगह गिलास रखा हुआ है और सब वहीं से पानी पीते हैं, मगर एक शख़्स आया और पानी पीकर वो गिलास अपने कमरे में ले गया, या किसी और जगह रख दिया।

हज़रत थानवी रहमतुल्लाह अलैह ने ये बात लिखी है कि अगर कोई ऐसा करता है तो ये गुनाह की बात है, क्योंकि जहाँ गिलास रहता है वहाँ कोई दूसरा भी पानी पीने आएगा, उसको गिलास नहीं मिलेगा तो उसे

तकलीफ़ होगी, और ईज़ा–ए–मुस्लिम (मुसलमान को तकलीफ़ देना) हराम है। ये तो सिर्फ़ एक मिसाल है, वर्ना इस तरह के कई वाक़ेआत पेश आते रहते हैं कि कुछ चीज़ें सबके इस्तेमाल की होती हैं, उनको एक जगह रखना होता है, मगर आदमी लापरवाही में इधर–उधर रख देता है। तो ये तकलीफ़ पहुँचाने वाली बात है।

राहत पहुँचाने वाली बात ये होती है कि आदमी दूसरों को तर्जीह दे, दूसरों की राहत का ज़रिया बने। जैसे गर्मियों के मौसम में मस्जिद में हर आदमी यही चाहता है कि पंखे के नीचे खड़ा हो। लेकिन ऐसे में अख़लाक़ का तक़ाज़ा ये है कि आदमी दूसरे को तर्जीह दे। यही वो अमल है जिस पर अज्र (सवाब) मिलता है।

अगर इसके बरअक्स करेगा, जैसे एक आदमी पहले से मस्जिद में किसी जगह बैठा है और दूसरा आकर ज़बरदस्ती पंखे के नीचे बैठने की कोशिश करे, तो ये यक़ीनन खुद–ग़रज़ी की बात है, जो इस्लाम में निहायत नापसंदीदा है।

आदमी अपनी ज़ाती ज़िन्दगी में और सबसे बढ़कर इज्तिमाई ज़िन्दगी में, चाहे वो घर की इज्तिमाई ज़िन्दगी हो या बाहर की, हर जगह वो अपना फ़ायदा देखता है और दूसरों को फ़ायदा पहुँचाना नहीं चाहता। हालाँकि अख़लाक़ का तक़ाज़ा ये है कि आदमी जो भी भलाई कर सके, दूसरों को जो भी राहत और आराम पहुँचा सके, उसमें वो कोई कोताही न करे।

अख़लाक़ का सिर्फ़ ये मतलब नहीं है कि आदमी खुशमिज़ाजी से मिल ले, बल्कि इसमें ये भी शामिल है कि वो दूसरों को तकलीफ़ न पहुँचाए, बल्कि दूसरों की राहत का ज़रिया बने। अगर कोई मौक़ा आए तो वो दूसरों को राहत पहुँचाने के लिए जो भी सामान कर सकता हो, वो ज़रूर करे। यही असल अख़लाक़ का तक़ाज़ा है, और इस ज़माने में इसकी बहुत कमी है। इस वक़्त लोगों के अख़लाक़ बद से बदतर होते चले जा रहे हैं। इस वक़्त समाज में इस्लामी अख़लाक़ का नमूना नज़र नहीं आता।

अख़लाक़–ए–नबवी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम):

अल्लाह के नबी स0अ0व0) के बारे में खुद कुरआन मजीद की गवाही है:

(बेशक आप अख़लाक़ के बुलंद तरीन मक़ाम पर फ़ाइज़ हैं।)

आप स0अ0व0) के अख़लाक़ की मिसालें तो ऐसी हैं कि अक़्लें दंग रह जाएँ। आप स0अ0व0) को जो शहीद करने के लिए आया, आपने उसको भी माफ़ कर दिया। फ़ज़ाला का वाक़ेआ मशहूर है, आप स0अ0व0) तवाफ़ कर रहे हैं, वो ज़हर में बुझा तीर लेकर आया और आपका पीछा करने लगा। आपको अल्लाह ने वही के ज़रिये इत्तिला दी। आपने फ़रमायारू "कहो मियाँ फ़ज़ाला! कैसे आना हुआ?"

उसने कहारू "बस यूँ ही किसी से काम आ गया।"

आप स0अ0व0) ने फ़रमायारू "मियाँ! सच–सच बताओ।" बस उसी वक़्त उसका दिल बदल गया। आप स0अ0व0) के चेहरे के जमाल और आपके अंदाज़ को देखकर उसके दिल पर ग़ैर मामूली असर पड़ा। फिर उसने कहारू "मैं ग़लत नियत से आया था, लेकिन अब मैं ईमान लाना चाहता हूँ। इस वक़्त मुझे आप सबसे ज़्यादा महबूब हैं। इस से पहले जब मैं यहाँ नहीं आया था, तो अगर किसी से दुश्मनी रखता था, तो वो आप ही थे। लेकिन अब आपसे बढ़कर कोई महबूब नहीं।" इस पर आपने कुछ नहीं फ़रमाया।

इससे भी बढ़कर ग़ज़्वा–ए–ज़ात–उर–रक़ा का वाक़ेआ है कि एक शख़्स क़त्ल के इरादे से आया। उसने कहारू "आपको मुझसे कौन बचाएगा?"

आप स0अ0व0) ने फ़रमायारू "अल्लाह।" तो उसके हाथ से तलवार छूट गई। फिर आपने फ़रमायारू "अब तुम्हें मुझसे कौन बचाएगा?" वो बोलारू "आप तो बड़े शरीफ़ और अच्छे हैं।"

आप स0अ0व0) ने फ़रमायारू "तुम ईमान क़बूल कर लो।"

उसने कहारू "मैं ईमान नहीं ला सकता।"

अगर आप (स0अ0व0) चाहते तो ज़बरदस्ती करते, मगर आपने कहीं ज़बरदस्ती नहीं की। बस एक दफ़ा आपने कहा। जब उसने मना किया तो छोड़ दिया और फ़रमायारू "जल्दी चले जाओ, कहीं तुम्हें कोई देख न ले और तुम्हें परेशान न करे।"

ग़ौर करने की बात है कि ये कौन कर सकता है कि एक शख़्स क़त्ल करने आए और उसे छोड़ दिया जाए?

ईला के शरई एहकाम

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

ईला के मानेः

ईला का शब्दिक मतलब क़सम खाना है, और शरीअत की इस्तिलाह में ईला ये है कि शौहर चार महीने या उससे ज़्यादा की मुद्दत तक अपनी बीवी से हमबिस्तरी न करने की क़सम खा ले।

(फत्हुल क़दीरः ४/४०)

ईला को ज़माना–ए–जाहिलियत में तलाक की एक किस्म समझा जाता था।

(हिदाया मआल फत्हः ४/४३)

जिसमें शौहर लंबी मुद्दत, जैसेरू साल, दो साल, बल्कि इससे भी ज़्यादा मुद्दत तक के लिए क़रीबत इख़्तियार न करने की क़सम खा लेता था, जिसकी वजह से औरत श्मुअल्लक़ाश बन कर रह जाती थी। लिहाज़ा, शरियत–ए–इस्लामिया ने इस ज़ुल्म को ख़त्म कर दिया और कुरआन में ये अहकाम नाज़िल हुएः

{لِّلَّذِينَ يُؤْلُونَ مِن نِّسَآئِهِمْ تَرَبُّصُ أَرْبَعَةِ أَشْهُرٍ فَإِنْ فَآؤُوا فَإِنَّ اللّٰهَ غَفُورٌ رَّحِيمٌ ۝ وَإِنْ عَزَمُوا الطَّلَاقَ فَإِنَّ اللّٰهَ سَمِيعٌ عَلِيمٌ} (البقرة:٢٢٦-٢٢٧)

"जो लोग अपनी बीवियों से ईला करते हैं, उनके लिए चार महीने का इंतिज़ार है। फिर अगर वो रुजू कर लें तो यक़ीनन अल्लाह बहुत माफ करने वाला, निहायत रहम वाला है। और अगर उन्होंने तलाक का पक्का इरादा कर लिया है तो यक़ीनन अल्लाह बहुत सुनने वाला, बहुत जानने वाला है।"

क्योंकि इस्तिलाही ईला उसी वक्त होता है जब चार महीने या उससे ज़्यादा मुद्दत के लिए औरत से हमबिस्तरी न करने की क़सम खाए, लिहाज़ा अगर चार महीने से कम की क़सम खाई या क़सम खाए बग़ैर चार महीने या उससे ज़्यादा मुद्दत तक हमबिस्तरी न की, तो उस पर आगे आने वाले ईला के अहकाम लागू नहीं होंगे।

ईला का रुक्नः

ईला का रुक्न ये है कि अल्लाह तआला की ज़ात या उसकी किसी सिफ़त के नाम पर क़सम खाकर कहे कि मैं चार महीने या उससे ज़्यादा मुद्दत तक बीवी के पास नहीं जाऊँगा। या फिर क़सम न खाए मगर शर्त व जज़ा का तरीका इस्तेमाल करे, मसलनरू कहे कि अगर मैं चार महीने के दौरान बीवी से हमबिस्तरी करूँ तो मुझ पर हज लाज़िम होगा, या इतना इतना सदक़ा देना पड़ेगा। (बदाइअरू ४/२५४)

ईला के अहकामः

अहनाफ़ के नज़दीक ईला का हुक्म ये है कि ईला करने के बाद अगर चार महीने तक बीवी से हमबिस्तरी न की तो चार महीने पूरे होते ही बीवी पर एक तलाक़–ए–बाइन वाक़े हो जाएगी। और अगर चार महीने के दौरान बीवी से हमबिस्तरी कर ली तो शौहर पर क़सम का कफ्फ़ारा लाज़िम होगा। यानी या तो दस गरीबों को दो वक्त खाना खिलाए, या हर गरीब को सदक़ा–ए–फ़ित्र के बराबर (यानि तक़रीबन एक किलो ६३३ ग्राम गेहूँ या उसकी कीमत) दे दे, या दस गरीबों को एक–एक जोड़ा कपड़ा दे दे। अगर इन चीज़ों की इस्तिताअत न हो तो मुसलसल तीन दिन रोज़े रखेः

{فَكَفَّارَتُهُ إِطْعَامُ عَشَرَةِ مَسَاكِينَ مِنْ أَوْسَطِ مَا تُطْعِمُونَ أَهْلِيكُمْ أَوْ كِسْوَتُهُمْ أَوْ تَحْرِيرُ رَقَبَةٍ فَمَن لَّمْ يَجِدْ

فَصِيَامُ ثَلَاثَةِ أَيَّامٍ} (المائدة:٨٩)

फिर बीवी पर तलाक़ नहीं पड़ेगी।

(शामीः २/५६३)

कुछ मिसाले जिनसे शौहर ईला करने वाला माना जाएगाः

(१) अगर शाबान के महीने में क़सम खाई कि जब तक आशूरा का रोज़ा न रख लूँ, बीवी से हमबिस्तरी नहीं करूँगा, तो ये शरई ईला होगा।

(२) अगर बच्चा शीरख्वार है और दूध छुड़ाने में चार महीने या उससे ज़्यादा बाकी हैं और शौहर कहे कि जब तक बच्चा दूध न छुड़ा दे मैं क़रीबत नहीं करूँगा, तो ये शरई ईला होगा।

(३) अगर बीवी से कहे कि अल्लाह की क़सम! मैं कभी तुझसे हमबिस्तरी नहीं करूँगा, फिर चार महीने तक ऐसा ही रहा, तो जैसा कि ऊपर बताया गया, बीवी पर एक तलाक़–ए–बाइन वाक़े हो जाएगी। फिर अगर बीवी ने अद्दत गुज़रने के बाद किसी दूसरे से शादी कर ली, फिर उस से तलाक और अद्दत के बाद पहले शौहर के पास आई, तो चूंकि पहले शौहर ने दायमी ईला किया था, ईला का हुक्म फिर लौट आएगा। और अगर शौहर ने चार महीने के दौरान हमबिस्तरी कर ली, तो उस पर क़सम का कफ्फ़ारा लाज़िम होगा। अगर चार महीने तक हमबिस्तरी न की, तो दूसरी तलाक़ पड़ जाएगी। इसी तरह तीसरी बार भी होगा। फिर तीसरी तलाक़ के बाद अगर वो अद्दत पूरी करके दूसरे शौहर से निकाह करे, तलाक़ हो और अद्दत के बाद पहले शौहर के पास लौटे, तो अब पहले ईला का हुक्म खत्म हो जाएगा। अब न तो चार महीने के दौरान हमबिस्तरी से कफ्फ़ारा होगा, न ही चार महीने तक हमबिस्तरी न करने से तलाक।

(हिदायाः ४/४६)

अगर ईला के बाद हमबिस्तरी करने से क़ादिर न रहाः

अगर ईला के बाद शौहर या बीवी किसी बीमारी में मुबतला हो गए या लंबी मुद्दत तक सफ़र या जेल में रहे, तो चार महीने के दौरान ज़बानी या तहरीरी तौर पर रुजू कर लें तो अहनाफ़ के नज़दीक ये रुजू सही माना जाएगा। लेकिन अगर चार महीने के दौरान वो क़ादिर हो गया, तो फिर रुजू के लिए हमबिस्तरी ज़रूरी होगी। (शामीः २/६००)

अगर दायमी ईला किया होः

अगर दायमी ईला किया हो तो चार महीने पूरे होने पर तलाक़ नहीं पड़ेगी, लेकिन जब भी हमबिस्तरी करेगा, क़सम का कफ्फ़ारा देना पड़ेगा।

(शामीः २/५६६)

अगर क़सम के बजाय शर्त व जज़ा से ईला किया, फिर चार महीने के दौरान हमबिस्तरी कर लीः

जैसा कि ऊपर बताया गया, अगर शर्त व जज़ा से ईला किया, मसलनः कहे कि अगर मैं चार महीने के दौरान तुमसे हमबिस्तरी करूँ तो मुझ पर हज होगा या सदक़ा होगा, फिर अगर उसने हमबिस्तरी कर ली तो जो जज़ा तय की थी, वो पूरी करनी होगी, या कफ्फ़ारा–ए–यमीन देना होगा। उसे दोनों में से किसी का भी इख़्तियार रहेगा।

(शामीः २/५६५)

मुत्तलका बीवी से ईलाः

अगर कोई शख्स अपनी उस बीवी से ईला करे, जिसे तलाक़–ए–रिज़ई दे दी थी, तो ईला होगा। लेकिन अगर तलाक़–ए–बाइन दे रखी थी तो ईला नहीं होगा। और अगर मुत्तलका रिज़ई की अद्दत चार महीने पूरे होने से पहले पूरी हो गई तो ईला खत्म हो जाएगा।

(हिदाया मआल फत्हः ४/५२)

कुर्बानी का पैग़ाम

मोहम्मद अमीन हसनी नदवी

इश्क़–ओ–मोहब्बत का कुर्बानी, जाँनिसारी और जाँफ़िशानी से गहरा रिश्ता है। हर मोहब्बत सबूत के तौर पर कुर्बानी चाहती है और मोहब्बत का दावा करने वाले या तो कुर्बानी पेश करके अपने दावे में कामयाब होते हैं या फिर न पेश कर सकने की सूरत में अपनी मोहब्बत को शर्मिंदा करते हैं और खुद इश्क़ के दरबार में रुसवा होते हैं, क्योंकि दावे के लिए सबूत की वही अहमियत है जो भूखे के लिए ग़िज़ा की है, प्यासे के लिए पानी की है। अगर कोई प्यास की शिद्दत का इज़हार करे और पानी के हासिल की कोशिश न करे तो उसको अपने दावे में झूठा समझा जाएगा। तारीख़–ए–इंसानी कुर्बानी के वाक़िआत से भरी हुई है। ऐसे लोग भी गुज़रे हैं जिन्होंने राह–ए–इश्क़ में अपना सब कुछ कुर्बान कर दिया। उनका नाम इश्क़ की अलामत बन गया, मगर वो सब ला–हासिल मोहब्बत के पीछे भाग रहे थे। उन्होंने इश्क़–ए–मजाज़ी को मताअ–ए–जाँ समझ लिया था। तारीख़ के सफ़्हात में महफूज़ तो हो गए, उनका नाम इश्क़–ए–मजाज़ी का इस्तिआरा बन गया, लेकिन इख़्तेताम "न खुदा ही मिला न विसाल–ए–सनम" पर हुआ।

इसके बरअक्स अल्लाह के कुछ बंदे ऐसे भी होते हैं जो इश्क़–ए–हक़ीक़ी को मताअ–ए–जाँ बनाते हैं। जिनकी बुलंद निगाह दुनिया की सतही चीज़ों पर नहीं ठहरती बल्कि अर्श पर जलवा–अफ़रोज़ खुदा–ए–बुज़ुर्ग–ओ–बरतर पर जाकर ठहर जाती है। यही वो लोग हैं जो इश्क़–ए–हक़ीक़ी में फना हो जाते हैं। वो फना फ़ि–अल्लाह होते हैं मगर बक़ा बिल्लाह का तमग़ा पा लेते हैं। इश्क़–ए–हक़ीक़ी की राह में दी जाने वाली कुर्बानियों की इस रौशन और तवील तारीख़ में एक कुर्बानी ऐसी है जिसके सामने तमाम कुर्बानियाँ हीच और बेमायः हैं। वो कुर्बानी न सिर्फ़ मोहय्यर–उल–उकूल है बल्कि वो इस हक़ीक़त से पर्दा हटाती है कि रू–ए–ज़मीन पर सबसे सख़्त आज़माइश से जिनको गुज़ारा जाता है वो तबक़ा अंबिया अलैहिमुस्सलाम का है। आख़िरी नबी हज़रत मुहम्मद (स0अ0व0) का इरशाद है:

"सबसे सख़्त आज़माइश अंबिया की होती है।"

कुर्बानी का लफ़्ज़ जब बोला जाता है तो सबसे पहले जिसकी कुर्बानियों पर नज़र जाती है वो कुर्बानी अबुल अंबिया हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) ने पेश की। बल्कि उनकी पूरी ज़िन्दगी कुर्बानियों से ही इबारत है। उन कुर्बानियों की कुबूलियत कई जगहों और कई अंदाज़ से महबूब ने खुद बयान की और इब्राहीम को अपनी मोहब्बत और अपनी तरफ़ से "ख़लील" बनाए जाने का एलान भी किया:

{وَإِذِ ابْتَلَىٰ إِبْرَاهِيمَ رَبُّهُ بِكَلِمَاتٍ فَأَتَمَّهُنَّ قَالَ إِنِّي جَاعِلُكَ لِلنَّاسِ إِمَاماً} (البقره:١٢٤)

दूसरी जगह उनकी वफ़ादारी को भी वाज़ेह किया:

{وَإِبْرَاهِيمَ الَّذِي وَفَّىٰ} (النجم:٣٧)

{وَاتَّخَذَ اللَّهُ إِبْرَاهِيمَ خَلِيلا} (النساء:١٢٥)

हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम की इताअत का सबको हुक्म दिया:

{وَاتَّبَعَ مِلَّةَ إِبْرَاهِيمَ حَنِيفاً} (النساء:١٢٥)

और साफ़ तौर पर ये भी एलान कर दिया कि इब्राहीमी तरीक़े से हटने वाला सिर्फ़ कमअक़्ल और बेवक़ूफ़ ही हो सकता है:

{وَمَن يَرْغَبُ عَن مِّلَّةِ إِبْرَاهِيمَ إِلَّا مَن سَفِهَ نَفْسَهُ وَلَقَدِ اصْطَفَيْنَاهُ فِي الدُّنْيَا وَإِنَّهُ فِي الْآخِرَةِ لَمِنَ الصَّالِحِينَ إِذْ قَالَ لَهُ رَبُّهُ أَسْلِمْ قَالَ أَسْلَمْتُ لِرَبِّ الْعَالَمِينَ} (البقره:١٣٠-١٣١)

अल्लाह ने हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) से कुर्बानियाँ लीं और उन्होंने हर तरह की कुर्बानी पेश की और हर तरह की मोहब्बत को मिटाकर उस खुदा–ए–वाहिद की मोहब्बत को अपने दिल का मरकज़ बनाया। इसी मोहब्बत का इनाम ष्इमामत–ए–इंसानीष का मिला और मनासिक–ए–हज हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम की इन्हीं कुर्बानियों की यादगार के तौर पर हैं। हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने ख़ालिस मुशरिकाना माहौल में आँखें खोलीं। बाप बुतों का पुजारी और पुजारी था, घर बुतों की आमाजगाह बना था। कुर्बानी की शुरुआत यहीं से होती है। बाप को समझाने की हर मुमकिन कोशिश

की मगर बाप ने समझना न चाहा। हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम मुख़ालिफ़ाना माहौल में तौहीद की मुनादी करते रहे। मुशरिकाना माहौल में बुतों पर ज़र्ब लगाते रहे। अपने मालिक की तरफ़ ख़ल्क़–ए–खुदा को दावत देते रहे। घर छोड़ दिया और खुदा के हुक्म पर बे–आब–ओ–ग़याह इलाक़े को अपनी आरज़ी क़यामगाह बनाया। बीवी और इकलौते फ़र्ज़ंद को उसी बे–आब–ओ–ग़याह वादी में छोड़ कर ख़ल्क़–ए–खुदा की रहनुमाई के लिए फिर निकल गए। बीवी ने इस्तिफ़सार किया तो फ़रमायाः "हुक्म खुदावंदी है।"

कुछ अरसा के बाद दोबारा तशरीफ़ लाते हैं। अब बेटा अपने पाँव पर खड़ा होने लगा था, बाप की उंगली पकड़ कर चलने लगा था। बाप की मोहब्बत को महसूस करने लगा था और इकलौता था, बाप की पूरी तवज्जोह का महवर, उसके बुढ़ापे का सहारा, उसकी राहत–ओ–सुकून का ज़रिया। लेकिन अभी इश्क़ के इम्तिहान और भी हैं और ये इम्तिहान बाक़ी तमाम इम्तिहानों से ज़्यादा सख़्त। हुक्म होता हैरू ख़्वाब में इकलौते फ़र्ज़ंद को ज़बह करने का। जो उनकी आँखों की ठंडक, बुढ़ापे का सहारा और शब–ए–तारीक़ में माँगी गई दुआओं का नतीजा था। न कोई तावील, न कोई हीला। बल्कि इश्क़–ए–हक़ीक़ी का जाम पी चुके बाप–बेटे की इस लाज़वाल दास्तान को कुरआन किस तरह पेश करता है, आइए देखते हैं:

{رَبِّ هَبْ لِي مِنَ الصَّالِحِينَ... قَدْ صَدَّقْتَ الرُّؤْيَا إِنَّا كَذَٰلِكَ نَجْزِي الْمُحْسِنِينَ}(الصافات:۱۰۰-۱۰۵)

कुरआन मजीद ने जिस अंदाज़ से इस क़िस्सा को बयान किया है वो बताता है कि अल्लाह की मोहब्बत ने हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम को कैसा मस्त कर दिया था। मोहब्बत–ए–इलाही में महवियत की कैफ़ियत थी। बाप ने अपने फ़र्ज़ंद से कहारू मैंने ख़्वाब देखा है कि मैं तुमको ज़बह कर रहा हूँ, तुम्हारी क्या राय है? बेटे ने जवाब दियाः "ऐ मेरे अब्बाजान! आपको जो हुक्म दिया गया है, उस पर अमल कीजिए। आप मुझे सब्र करने वालों में पाएँगे।" तारीख़–ए–इंसानी इस जैसी कुर्बानी पेश करने से आजिज़ है।

इंसानी ज़िन्दगी को बनाने और संवारने और आला मक़ाम तक पहुँचाने के लिए जिस शख़्सियत को नमूना बनाया गया, वो आला नमूना हज़रत इब्राहीम का है, जिसकी वफ़ा–शिआरी की गवाही खुद ख़ालिक़–ए–कायनात ने दीः

{وَإِبْرَاهِيمَ الَّذِي وَفَّىٰ}(النجم:۳۷)

और ये गवाही सिर्फ़ यूँ ही नहीं मिली बल्कि कुर्बानी की जितनी मिसालें हो सकती हैं, इब्तिदा से लेकर इंतिहा तक सब से उनको गुज़ारा गया।

ईद–उल–अज़्हा जो इसी कुर्बानी की याद में है जिसमें जानवरों की कुर्बानी दी जाती है, ज़रा ग़ौर किया जाए और इस कुर्बानी को अपनी निगाह में रखा जाए जो बाप अपने बेटे की दे रहा था। क्या वहाँ वाक़ई कुर्बानी बेटे की लेना मक़सूद थी? नहीं! वहाँ कुर्बानी ग़ैर–अल्लाह की मोहब्बत से अपने दिल को आज़ाद करके देनी थी। वहाँ अपने महबूब की मोहब्बत में न अपनी जान की परवाह, न बेटे की परवाह, न बाप की फ़िक्र, न मुआशरे और दुनियावी रस्म–ओ–रिवाज की फ़िक्र। वहाँ अपने अल्लाह को राज़ी करना था। हम जो कुर्बानी में जानवर ज़बह करते हैं, उसकी फ़ज़ीलत उसी वक़्त है जब वो कुर्बानी ख़ालिस अल्लाह के लिए हो और छुरी चलाते वक़्त दिल से यही सदा आनी चाहिए कि अल्लाह की मोहब्बत के आगे सारी मोहब्बतें कुर्बान। हम अल्लाह से ब–ज़बान–ए–हाल ये कहेंरू मालिक, ये जान तेरी दी हुई है, हम अपनी जानें तुझ पर कुर्बान करते हैं। तेरी मोहब्बत हमारे दिल में बसी है। हम अपनी ख़्वाहिशात से, अपने तौर–तरीक़े से, अपने रस्म–ओ–रिवाज से सब से तेरी खुशनूदी के लिए दस्तबरदारी का एलान करते हैं।

आज देवमालाई तहज़ीब के नर्ग़े में रहते हुए जहाँ ख़ालिस मुशरिकाना और मुल्हिदाना माहौल है, जहाँ हर तरफ़ इर्तिदाद की एक लहर है, जहाँ नौजवान चंद सिक्कों में बेचे और खरीदे जा रहे हैं, जहाँ ईमान सस्ता हो गया, वहाँ इसी इब्राहीमी आवाज़ को बुलंद करने की ज़रूरत है जिसमें ख़ालिस तौहीद हैः

{قَدْ كَانَتْ لَكُمْ أُسْوَةٌ حَسَنَةٌ فِي إِبْرَاهِيمَ وَالَّذِينَ مَعَهُ... حَتَّىٰ تُؤْمِنُوا بِاللَّهِ وَحْدَهُ}(الممتحنة:۴)

आज इस कुर्बानी को सामने रखकर अपनी ज़िन्दगी का मुहासिबा किया जाए और अपने ईमान का अज़–सर्नौ जाइज़ा लिया जाए, अपने दिल को ग़ैर–अल्लाह की मोहब्बत से पाक किया जाए, इसमें उस वाहिद जुल–जलाल की मोहब्बत पैदा की जाए। जानवर पर छुरी चलाते हुए हर उस चीज़ पर छुरी चला दी जाए जो मालिक–ए–हक़ीक़ी से दूरी या उसकी नाराज़गी का सबब बने। तभी हमारी कुर्बानी अन्द–अल्लाह मक़बूल होगी। अल्लाह तआला का इरशाद हैः

{لَن يَنَالَ اللَّهَ لُحُومُهَا وَلَا دِمَاؤُهَا وَلَٰكِن يَنَالُهُ التَّقْوَىٰ مِنكُمْ}(الحج:۳۷)

कि अल्लाह को इस (जानवर) का गोश्त या खून नहीं पहुँचता बल्कि सिर्फ़ तुम्हारा तक़्वा पहुँचता है।

इस्लामी वक्फ़
और सरकार का आक्रामक रवैया

मोहम्मद नज्मुद्दीन नववी

निज़ाम–ए–वक्फ़, इस्लामी इतिहास की एक शानदार उपलब्धि और बेमिसाल कारनामा है, जिसका सिलसिला कुरूनी अव्वल से चला आ रहा है और जिसकी कोई मिसाल इस्लाम से पहले नहीं मिलती। हर ज़माने में वक्फ़ की ज़रूरत, उसकी उपयोगिता और अहमियत को स्वीकार किया गया है। पिछले ज़माने की इतिहास पर अगर एक नजर डाल ली जाए तो यह हक़ीक़त साफ़ नज़र आती है कि बड़ी–बड़ी तहज़ीबें मिस्र, यूनान, ईरान, और हिन्द में मौजूद थीं, जिन्होंने आर्थिक और मआशी दुनिया में तहलका मचाया था, लेकिन वक्फ़ के तसावुर तक उनकी पहुंच नहीं हुई। मशहूर फ़लसफ़ा प्लेटो के नाम से कौन वाकिफ़ नहीं! उसने सियासत–ए–मदीना और तदबीर–ए–मंज़िल के क़वानीन–ओ–असूल मुदव्वन करके शहरा–ए–जहाँ कारनामा अंजाम दिया, लेकिन उसकी परवाज़–ए–फ़िक्र–ओ–ख़्याल वक्फ़ के नज़ाम तक नहीं पहुँच सकी। दुनिया के बड़े आलिमों ने मुआशरा की सुधार और तरक्की व फ़लाह के लिए क़वानेन–ओ–असूल तैआर किए, मगर वक्फ़ जैसा कोई इसलाही और तरक्की वाला नज़ाम पेश नहीं कर सके।

इस्लाम में इबादात का दायरा बहुत वसीअ है, इसके नज़ाम–ए–इबादत में जहां बदनी इबादत का तसावुर है, वहीं माली इबादत को भी बड़ी अहमियत से बयान किया गया है। यही वजह है कि नमाज़ और रोज़े के साथ–साथ सदक़ा और ज़क़ात के हुक्म बताए गए हैं। माली इबादत में जिस तरह ज़क़ात की फजीलत और अहमियत अपनी जगह कायम है, उसी तरह वक्फ़ की अहमियत से इंकार नहीं किया जा सकता। वक्फ़ भी माली इबादत का एक पहलू है और सदक़ा जारीय की एक शकल है। कुरआन पाक की कई आयतें ऐसी हैं जिनमें इंफ़ाक़ और सदक़ात का ज़िक्र है, और कई हदीसों में भी तरगीब दी गई और इसके मुनाफ़े का ज़िक्र किया गया है। वक्फ़, इस्लामी माली नज़ाम में इंफ़ाक़ की तादीर बाकी रहने वाली मुनाफ़ा की एक शकल है। ज़क़ात से जहां मुस्लिम मुआशरा को आर्थिक तौर पर मज़बूती मिलती है, वहीं वक्फ़ का नज़ाम और इसका नुस्खा कीमिया आम इंसानों की सामाजिक और रफ़ाही तरक्की का ज़रिया और मआशी फ़लाह–ओ–बहबूद का ज़ामिन है।

वक्फ़ का असल मकसद सवाब–ए–आख़रित हासिल करना और रज़ा–ए–इलाही है। लुग़वी तौर पर वक्फ़ के मायने रोकने के हैं। वक्फ़ में असल मऊकूफ़ा चीज़ को रोक कर वक़फ़ि के हस्ब–ए–मंशा किसी नेक काम में ख़र्च किया जाता है। इसमें असल चीज़ बाकी रहती है, इसलिए इसे वक्फ़ का नाम दिया गया है। वक्फ़ का एक दूसरा मतलब भी है जिसमें वो तमाम जायदाद और मकामात आते हैं जो लंबे अरसे से दीनी, मज़हबी और खैराती मकसदों के लिए इस्तेमाल होते आए हों, जिसे श्वक्फ़ बाला इस्तेमालश कहते हैं। खैर, आम सदक़ात और वक्फ़ में बुनियादी तौर पर फर्क है। आम सदक़ात में असल चीज़ जरूरतमंदों को दे दी जाती है और उसका मालिकाना खत्म हो जाता है, लेकिन वक्फ़ में ऐसा नहीं होता। सही बुख़ारी की एक हदीस में है:

"असल चीज़ को इस तरह ख़ैरात करो कि न वह

बेची जा सके, न हिबा हो सके और न उसमें विरासत हो, बल्कि इसका मुनाफ़ा लोगों को मिलता रहे।"

वक्फ़ की कानूनी और शरई तफ़्सीर ये है कि:

"किसी चीज़ को अपनी मिल्कियत से निकाल कर अल्लाह की मिल्कियत में दे देना और उसकी मुनाफ़ा को फक़र–ओ–ग़ना का लिहाज़ किए बिना दायमी तौर पर रज़ा–ए–इलाही की नीयत से लोगों, संस्थाओं, मस्जिदों, मकबरों या दूसरे नेक कामों के लिए खास कर देना।" (मजमुआ–ए–क़वानेन–ए–इस्लामी: 343, मुद्रित दिल्ली)

जो चीज़ राह–ए–खुदा में वक्फ़ की जाती है, वह वक्फ़ वाले की मिल्कियत से निकल कर सीधे अल्लाह की मिल्कियत में चली जाती है।

هو حبسه على حكم ملك الله تعالى

(अर–रद्दु मआ–दुर, किताब–ए–वक्फ़)

यहाँ ये बात स्पष्ट करना ज़रूरी है कि वक्फ़ की तह में सदक़ा का तसावुर मौजूद है, जिसमें दो ख़ास ख़ासियतें हैं:

पहली ये कि जब बंदे से कोई बड़ा गलती हो जाए तो अल्लाह की नाराज़गी और ग़ज़ब उसकी तरफ़ होता है और सदक़ा उस गुस्सा को ठंडा कर देता है।

إن الصدقة لتطفئ غضب الرب

"निश्चित ही सदक़ा गुनाहों को ऐसे बुझा देता है जैसे पानी आग को बुझाता है।"

إن الصدقة لتطفئ الخطيئة

और अल्लाह की रहमत और खुशनूदी उस पर होती है।

दूसरी ख़ासियत ये कि ऐसा शख़्स बुरी मौत से बचता और महफ़ूज़ रहता है, जैसा कि सुनन–ए–तरमज़ी की एक हदीस से तसदीक होती है।

उल्लेखनीय है कि पहले दौर में खुद नबी अक़रम (स0अ0व0) और आपके कई सहाबा ने रज़ा–ए–खुदा की खातिर अपनी जायदादें वक्फ़ कीं। जब कुरआन पाक की यह आयत नाज़िल हुई:

لَنْ تَنَالُوا الْبِرَّ حَتّٰى تُنْفِقُوا مِمَّا تُحِبُّوْنَ

"तुम नेक काम तक नहीं पहुँच सकते जब तक कि तुम उस चीज़ को न खर्च करो जिसे तुम पसंद करते हो।"

तो हज़रत अबू तलहा (रज़ि0). ने अपना पसंदीदा बाग़ राह–ए–खुदा में वक्फ़ किया।

इन्हीं आयतों और हदीसों से पता चलता है कि इंफ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह की अहमियत क्या है। एक हदीस–कुद्सी में फ़रमाया गया है:

أنفق يا ابن آدم أنفق عليك (बुख़ारी: 5037)

"ऐ बेटे–आदम! खर्च कर, मैं तेरे लिए खर्च करूंगा।"

एक और हदीस में आया है:

إذا مات الإنسان انقطع عمله إلا من ثلاث، صدقة جارية أو علم ينتفع به أو ولد صالح يدعو له

(सनन–ए–तरमज़ी: 1376)

"जब इंसान मरता है तो उसके सारे अमल रुक जाते हैं सिवाय तीन के: सदक़ा जारीय, ऐसा इल्म जिससे फायदा होता है, और नेक औलाद जो उसके लिए दुआ करती है।"

वक्फ़ की यही खूबीयत है कि यह इंसान को भलाई के कामों में आगे बढ़ने की तरगीब देता है, क्योंकि यह नेक अमल उसका ज़ख़ीरा–ए–आख़िरत बनता है। कुरआन पाक में फरमाया:

وَمَا تُنْفِقُوا مِنْ خَيْرٍ فَلِأَنْفُسِكُمْ (बक़रह: 272)

"और जो कुछ तुम खर्च करते हो वह तुम्हारे ही फायदे के लिए है।"

एक हदीस में है:

إن ظل المؤمن يوم القيامة صدقته

(इब्न ख़ज़ीमाह: 2432)

"निश्चय ही क़यामत के दिन मोमिन पर उसका

सदक़ा छाँव की तरह होगा।"

यह हदीस इस बात को स्पष्ट करती है कि सदक़ा करने वाले के लिए क़यामत के दिन उसका सदक़ा छाँव बनकर उसे उस दिन की तपिश से बचाएगा।

वतन–ए–अज़ीज़ भारत में मुसलमानों ने अपने–अपने दौर में इंफ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह और वक़्फ़ में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया। यहाँ वक़्फ़ का एक शानदार माज़ी रहा है। यहाँ इस्लाम की आग़म के साथ वक़्फ़ का सिलसिला शुरू हो गया था। इतिहास बताता है कि फ़ीरोज़शाही दौर में इस में खूब तरक़्क़ी हुई, बाद के दौर में भी सल्तनत–ए–हिंद के सुल्तानों ने इसमें अहम क़रिदार निभाया। मगर अफ़सोस कि मुस्लिम सल्तनत के आख़िरी दौर में अंग्रेज़ों के ज़ोर–शोर के दख़ल से वक़्फ़ की जमीनों में चोरी–छिपे हड़प किए गए। यहाँ तक कि वक़्फ़ संपत्तियों की हिफ़ाज़त के लिए बड़ी जद्दोजहद हुई और अंततः मार्च 1913 में श्द मुस्लिम वक़्फ़ वैलिडेटिंग एक्ट 1913श नाम से एक कमज़ोर और नाक़िस कानून लागू हुआ। सुधार के साथ 1923 में यह कानून थोड़ा बेहतर हुआ। देश आज़ाद हुआ तो इसी कानून के आधार पर 1954 का वक़्फ़ एक्ट बना, मगर वक़्फ़ की क़ायम हिफ़ाज़त नहीं हो सकी। फिर लंबी जद्दोजहद के बाद सेंट्रल वक़्फ़ एक्ट 1995 बना, लेकिन उसमें भी कमियां थीं जो वक़्फ़ के हितों को नुक़सान पहुँचाती थीं। 2010 के संशोधित कानून में भी ऐसी कमियाँ थीं, जो बिना चर्चा के लागू कर दी गईं। 2013 में मुस्लिम विद्वानों और समाज के दबाव से कुछ सुधार हुए, लेकिन मुसलमानों की सारी माँगें पूरी नहीं हुईं।

भारत में वक़्फ़ की ज़मीनें बहुत हैं। सच्चर कमेटी की रिपोर्ट है कि 9 लाख एकड़ से ज़्यादा ज़मीनें वक़्फ़ के पास हैं। यहाँ फौज और रेलवे के बाद सबसे ज़्यादा ज़मीनें वक़्फ़ के पास हैं। यही वजह है कि कई लोगों को यह मंज़र अच्छा नहीं लगता और देश की सत्ताधारी पार्टियों का रवैया वक़्फ़ और उसके क़ानूनों के प्रति ज़ालिमाना और संविधान की कई धाराओं के खिलाफ है। इस बात में कोई शक़ नहीं कि वक़्फ़ एक्ट 2013 में कोई भी संशोधन वक़्फ़ की संपत्ति की स्थिति को बदल देगा और ज़मीनों पर गैरक़ानूनी कब्ज़ों का सिलसिला तेज़ हो जाएगा।

मौजूदा सरकार ने वक़्फ़ संशोधन बिल पेश किया, दोनों सदनों से पास कराकर राष्ट्रपति की मंजूरी से लागू कर दिया। इसके खिलाफ न्यायप्रियों और मुसलमानों के प्रदर्शन के बावजूद यह कानून बना और लागू हो गया।

क़ानून के लागू होते ही इसके बुरे असर दिखने लगे। साफ़ ज़ाहिर था कि यदि इसे वापस नहीं लिया गया तो वक़्फ़ की ज़मीनों और संपत्तियों पर गैरक़ानूनी कब्ज़े का एक रुकने वाला सिलसिला शुरू हो जाएगा। यह कानून संविधान और इस्लामी शरीअत के सीधे खिलाफ़ है। यह मुसलमानों की मंशा से नहीं बना, बल्कि सरकार की तरफ़ से वक़्फ़ की आज़ादी और खुदमुक़्तारी को कमज़ोर करने की कोशिश है। इस मामले में समझना ज़रूरी है कि आधुनिक वक़्फ़ कानून के खिलाफ़ एक व्यापक आंदोलन जारी रखना, संविधान की सीमा में रहकर हर संभव संघर्ष करना न केवल दीनी बल्कि राष्ट्रीय फर्ज़ भी है। हमें उम्मीद है कि अल्पसंख्यक एकता बहुसंख्यकों के अहंकार को कम करने के लिए काफी होगी। साथ ही वक़्फ़ की संपत्तियों के रक्षक अपनी ज़िम्मेदारी पूरी ईमानदारी से निभाएं। इस मामले में कोई कसर न छोड़ें क्योंकि वे लोगों और अल्लाह के सामने जवाबदेह हैं।

फ़लसफ़ा–ए–हज

मुहम्मद मुसअब नदवी बारह बन्कवी

हज एक ऐसी इबादत है जिसमें बंदा माल–ओ–ज़र, सेहरा–ओ–बियाबान, आराम–ओ–आसाइश की परवाह किए बिना कशां कशां दयार–ए–महबूब में दाखिल होता है। यह ख़ालिक और मखलूक के बीच इश्क़–ओ–वफ़ा का बेजोड़ मज़हर है, जहाँ आशिक़ अपने दिल की लगाम अपने महबूब के सुपुर्द करके उसके हर–हर इशारे पर सर तस्लीम ख़म करता है। आशिक़ का दिल हैबत–ए–ईज़्दी, अज़मत–ए–बैतल्लाह से लरज़ रहा होता है, महबूब के तसव्वुर से आँखे अश्क़बार होती हैं, ज़ियारत–ए–रौज़ा–ए–हबीब (स0अ0व0) से आँखे मखमूर होती हैं। न चाल में करार बचता है न अंदाज़ में सुकून। बिखरे हुए बाल, बदन पर सादा सी दो सफ़ेद चादरें, बस एक ही धुन, एक ही फ़िक्र, वराफ़्तगी के आलम में कभी मिना तो कभी अरफ़ात, कभी तवाफ़ तो कभी सई। वहाँ सब की एक सी हालत, न कोई जर्नल न कोई कर्नल, न कोई शाह न कोई ग़दा, सब का एक सा लिबास, सब की एक ही मंज़िल, जज़्बा–ए–कुर्बानी, मासवा से बेज़ारगी और महबूब की खुश्नूदी व रज़ा की तलबगारी, इस आशिक़ाना अंदाज़ और वालिहाना अफ़आल और कुछ मख़्सूस अरकान को "हज" कहते हैं।

हज की अहमियतः

दीन–ए–इस्लाम के पाँच बुनियादी अरकान में से एक अहम रुक्न हज है, जिसे अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त ने हर उस मोमिन मर्द–ओ–औरत पर फ़र्ज़ किया है जो अपने घर के मामूली खर्चों के बाद इतनी माली इस्तिताअत रखता हो कि सफ़र–ए–हज के ख़र्च बर्दाश्त कर सके।

रसूले खुदा (स0अ0व0) का फ़रमान हैः

"जो शख़्स ख़ालिस अल्लाह के हुक्म की तामील में हज करे, दौरान–ए–हज फ़िस्क़–ओ–फिजूर से इज्तिनाब करे, वह गुनाहों से इस तरह पाक होकर लौटता है जैसे अभी माँ के पेट से पैदा हुआ हो।"

हज़रत अब्दुल्लाह इब्न मसूद (रज़ि0) से रिवायत है, हुज़ूर (स0अ0व0) ने इर्शाद फरमायाः

"हज और उमराह महताजी को ऐसे दूर करते हैं जैसे भट्टी लोहे, चाँदी और सोने के मैल को दूर करती है और हज्जे मबरूर का सवाब जन्नत ही है।" (सुनन तिरमिज़ी, किताब–ए–हज : 810)

हज एक ऐसी जामेअ इबादत है जिसमें तमाम इबादात की रूह शामिल है। इसमें ईसार है, कुर्बानी है, वहदत और इज्तिमाइयत है, इस्तिग़्ना है, सब्र है, मशक़्क़त है, बे–करारी है। हज्जे मबरूर का बदला जन्नत है।

मकासिद–ए–हज में सिर्फ़ कुछ मक़ामात की ज़ियारत ही नहीं बल्कि इसके पीछे इख़्लास और मोहब्बत का एक ताब–नाक क़िस्सा है। हज़रत इब्राहिम, हज़रत हाजरा, हज़रत इस्माईल (अलैहिमुस्सलाम) जैसी अज़ीम हस्तियों के ख़ुलूस–ओ–अज़ीमत की बे–मिसाल दास्तान है।

हज हज़रत इब्राहिम (अलैहिस्सलाम) के ज़रिये ऐलान किया गया एक अज़ीम मिशन का नाम हैः

وَأَذِّن فِي النَّاسِ بِالْحَجِّ يَأْتُوكَ رِجَالًا وَعَلَىٰ كُلِّ ضَامِرٍ يَأْتِينَ مِن كُلِّ فَجٍّ عَمِيقٍ

"लोगों में हज का ऐलान कर दो कि वे तुम्हारे पास पैदल आएं और दूर–दराज़ के रास्तों से सफ़र करने वाली उन ऊंटनियों पर सवार होकर आएं जो (लंबे सफ़र से) दुबली हो गई हों।"

यह आसमानी सदा हुनूज दिलों को बुला रही है, सदियां और ज़माने बीत जाने के बाद भी इंसानियत को तोहिद के महवर पर जमा होने की दावत दे रही है। यह दावत–ए–इब्राहीमी सब के लिए है कि लोग यहाँ आएं और अपने इमाम व पेशवा हज़रत इब्राहिम खलील अल्लाह की हर–हर अदा की नक़ल करें, तवाफ़–ए–शौक़ अदा करें, बे–साख्ता बैत–ए–अल्लाह से लिपट जाएं, सई के दौरान माँ की ममता और बे–करारी का अक्स पेश करें। कभी मिना की तरफ़ रवाना हों, तो कभी अरफ़ात के मैदान में अपने मौला रब्ब–ए–काइनात के हजूर गिड़गिड़ा कर दुआ व मुनाजात करें। रात मज़्दलफ़ा में बसर करें, फिर मिना की तरफ लौट पड़ें। अब थकावट से बदन चूर हो गया है, दिल चाहता है कि पल भर को ज़रा सुस्ता लें, मगर महबूब का हुक्म टालने की किस में हिम्मत? कदम कदम पर सफ़र की मशक्क़तों को बर्दाश्त करें, अपनी ख्वाहिशों के बुतों को पाश–पाश कर दें, बस उसी करीम आका की जुस्तूजू में दौड़ लगाते रहें, "लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक" की मुकद्दस आवाज़ से अपने किए हुए देरिना एहद को याद करें, ख़्वाहिश–ए–दुनिया और नापसंदीदा आदतों से आज़ाद होकर अपने रब्ब के क़रीब हो जाएं। मिना में शैतानों को कंकड़ी मारते हुए शिर्क व शैतानी ख़्यालात से अपनी नफ़रत और बेज़ारी का इश्तिहार कर दें, कुर्बानी पेश करके हिर्स के गले पर भी छुरी फेर दें, नफ़्स–ए–अम्मारह को कुचल कर दिलों का तज़किया करके पाक साफ़ हो जाएं कि दिल हीरे की तरह चमक उठे। इंसानी ज़रफ–ए–बहर–ए–बे–कराँ को अपने अंदर समेट लें। हज़ारों दर से ठोकरें खाए हुए लोग अपने मालिक–ए–हकीकी की तरफ लौट पड़ें, जो कुछ नहीं थे वे सब कुछ से अपना ताल्लुक जोड़ लें।

यही है वह रूह जिसके बारे में फरमाया गया:

{لِيَشْهَدُوا مَنَافِعَ لَهُمْ}

"ताकि वे अपने लिए फ़ायदों का मुआशिदा करें।"

फिर साथ ही "नाफ़िआ लहुम" में अहम नुक्ता यह भी है जो हर साहिब–ए–फ़िक्र को दावत–ए–फ़िक्र देता है कि ज़ेर–ए–साया–ए–ख़ाना–ए–ख़ुदा हर साल हर रंग–ओ–नसल, ज़ुबां और इलाके, हर तमदुन व संस्कृति से वाबस्ता लाखों लोग एक ही वक़्त में एक ही लिबास में एक ही नारा के साथ नुक्ता–ए–मर्कज़–ए–तौहीद पर जमा हों, उम्मत के मुश्तर्क़ मसाइल बाहमी गौर–ओ–फ़िक्र से हल हों और उनके अमली इज़्तिमाअत तय करने के मौके मिलें। यहाँ से फर्द–ओ–उम्मत की तख़्लीक–ए–नौ हो। यह इस्लामी इत्तिहाद व इज्तिमाइयत और उम्मत–साज़ी का एक बेहतरीन नमूना है कि अब इस दरबार में पहुँचते ही सब यकसाँ हो गए, न चौधरीयों की चौधराहट बची, न किसी का जाह–ओ–हशम, बस लाखों का मजमा सिबग़त–ए–अल्लाह के रंग में रंग गया, सब की एक ही पुकार हो गई "लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक।" यह इज़्ज़त–ओ–रूहानियत, इत्तिहाद, शान–ओ–शौकत का मज़हर है। यह मुहरीदीन–ए–इस्लाम के सामने उम्मत–ए–मुस्लिमा की अज़मत और ख़ुदा की लाज़वॅाल क़ुदरत पर उनके इत्मिनान की निशानी है। यह मुशरिक़ीन से इज़्हार–ए–बेज़ारी और मोमिनीन से इज़हार–ए–उन्स और यकजहती है। यह {أَشِدَّاءُ عَلَى الْكُفَّارِ رُحَمَاءُ بَيْنَهُمْ} की तस्वीर है।

अलग़रज़ हज एक ऐसी इबादत है जिसमें दीन–ओ–दुनिया, सियासी–ओ–सामाजिक हर किस्म के फ़ायदें शामिल हैं। अगर इस शुओर को ज़िंदा रखा जाए तो हज उम्मत–ए–मुसलिमा की बिदारी, इज्तिमाइयत और तमीरी इंक़लाब का नुक्ता–ए–आगाज़ बन सकता है। ख़ुदा तआला उम्मत–ए–मुसलिमा को हज के मक़ासिद–ओ–मसालेह को समझने और इससे भरपूर फ़ायदा उठाने की तौफीक़ अता फरमाए। आमीन या रब्ब अल–आलमीन।

कुर्बानी का वसीअ मतलब और आलमगीर पैग़ाम

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूँनी नदवी

ज़िल–हिज्जा का महीना हज़रत इब्राहीम खलीलुल्लाह व इस्माईल ज़बीहुल्लाह (अलैहिमुस्सलाम) की तारीख़–साज़ सुन्नत का यादगार है। दुनियाभर में हर साल मुसलमान इस सुन्नत पर अमल करते हैं और बेशुमार जानवरों की कुर्बानी पेश करके गोया यह इज़हार करते हैं कि उनके नज़र में ईमान और इसके तक़ाज़ों के सामने हर तक़ाज़ा हैच है। गौर करने की बात है कि महँगाई के इस दौर में मुख़तलिफ इलाक़ों में लोग बेश कीमती जानवर ख़तीर रक़में अदा करके ख़रीदते हैं और फिर बेदरीग़ उनका खून इस लिए बहा देते हैं कि यह अल्लाह का एक हुक्म और सुन्नत–ए–रसूल (स0अ0व0) है।

ज़रूरत है कि कुर्बानी के इस मतलब को ज़िल–हिज्जा की मक्सूस तारीख़ों में महदूद करके इसके पैग़ाम को कूज़े में बंद न किया जाए बल्कि इसके आफ़ाक़ी पैग़ाम को समझा जाए और आधुनिक दौर में असरी तक़ाज़ों के मद्द–नज़र इसके मतलब को समझने में वुसअत पाई जाए।

अस्र–ए–हाज़िर का सब से बड़ा तक़ाज़ा यह है कि उम्मत–ए–मुस्लिमा क़ौम–ए–आलम के सामने बहैसियत उम्मत–ए–मोहम्मदिया (स0अ0व0) अपनी पहचान और अपना तशख़्स तस्लीम कराए, बहैसियत एक कौम के आलमगीर सतह पर अपनी नाफ़ियात का लोहा मनवाए और बहेसियत एक उम्मत–ए–दावत के इस दुनिया में अपने वजूद की ज़रूरत व अहमियत को यकीनी बनाने की हर मुमकिन कोशिश करे। इसकी खातिर अगर उसे मुश्किल से मुश्किल–तरिन और अज़ीम से अज़ीम–तरिन कुर्बानियां भी पेश करनी पड़ें तो वह इस में पीछे न रहे, अगर इस उम्मत के अफराद को इसकी खातिर अपने घर बार छोड़ना पड़े तो वह एक लम्हा भी तर्दुद न करें, अगर इस सिलसिले में उन्हें अपनी औलाद की कुर्बानी देने की नौबत आए तो भी उन्हें ज़रा तज़द्दुब न हो, अगर उन्हें अपनी तिज़ारत सर्द पड़ जाने का ख़दशा हो तो भी वह हर हाल में लब्बैक कहने को तैयार हों। वाक़या यह है कि हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) की पूरी ज़िन्दगी और खास तौर पर उनकी कुर्बानी का अमल उसी हक़ीक़त का बेहतरीन तरजुमान है।

यह दौर महज़ जज़्बात की रव में बह जाने और बुलंदो–बांग दावों से मसरूर होने का नहीं है बल्कि इस वक्त ज़रूरत है आहनी अज़्म, अकीलाना नज़्म और तवील–उल–मियाद मंसूबा बंदी की, जो कौमें संजीदगी और ठंडे दिमाग़ से सोच समझ कर अपनी पालिसियां बनाती हैं उनके असरात भी देरपा होते हैं। अगर हम यह समझते हैं कि दो मिनट किसी से हंस कर बोलने से हालात में तब्दीली आ जाएगी, किसी हंगामी मौके पर किसी की मदद करके हम फातिह कहलाएंगे, या दावत–ए–तबलीग़ की रसीम खानापुरी करके हम इंक़लाब़ ले आएंगे, तो यक़ीना यह हमारी गलती होगी।

इस में शक़ नहीं कि यह काम बहुत मुबारक हैं और ख़ैर–ख़ैर काम अपनी तसीर से ख़ाली नहीं, इसकी बहारहाल अपनी ज़रूरत व अहमियत है। तहम इस में शक़ नहीं कि इस वक्त हमें अपनी सफ़ों में इत्तिहाद पैदा करने और दीन व शरीअत के आगे हर तक़ाज़े को कुर्बान करने की ज़रूरत है। यह वह जज़्बा है जो हमारे अंदर फुलादी सलाबत और हालात से निबर्द–आज़मा होने की सलाहियत पैदा करेगा, यही वह जज़्बा है जिसके नतीजे में हैरतअंगेज़ कारनामे ज़ुहूर पाने लगते हैं, यही वह जौहर है जिसकी तसीर से दुनिया की कौमें झुकती हैं और अपना मुक़्तदी तस्लीम करती हैं, और यही वह हथियार है जिसके ज़रिये मुसलमान दुनिया के हर कोने में इज़्ज़त–ओ–आफ़ियत, अमन–ओ–सलामती और पूरी नाफ़ियात के साथ रह सकते हैं। इस वक्त का सब से बड़ा मलेया यही है कि इस वक्त मुसलमानों की सफ़ों में आम तौर पर इसी जज़्बा का फाक़दान है, इस वक्त सब से बढ़ कर इसी जज़्बा को फरोग़ देने की ज़रूरत है।

माह–ए ज़िल–हिज्जा में कुर्बानी की सुन्नत हर

साल हमें यह पैग़ाम देती है कि हमें अपने अख़लाक़–ओ–क़िरदार, तरज़–ए–ज़िन्दगी और जज़्बात–ओ–कैफ़ियत को शरीअत–ए–मुस्तफ़वी (स0अ0व0) के सामने सर–तसलीम खुम करना है, हमें अपने तक़ाज़ों और तरजिहात पर दीन–ओ–मिल्लत के तक़ाज़ों और तरजिहात को मुक़द्दम रखना है, हमें अपने अंदर दीन की ऐसी फ़िक्र और तड़प पैदा करनी है कि इसके एक–एक जुज़ पर अमल छोड़ने से हमारी तबियत अफ़सर्दा हो जाए और हमारे आस–पास के माहौल को यह महसूस हो कि उन्हें अपने दीन की जुज़ियात भी हद दरजा अज़ीज़ हैं और इसके लिए यह कोई मोहूम खतरा भी मौल लेने को तैयार नहीं हैं। हमें इस बात की कोशिश करनी चाहिए कि अगर समाज में हम अहकाम–ए–इलाही और सुन्नत–ए–रसूल (स0अ0व0) की पामाली होते देखें तो हम उसी तरह गैरत–ओ–हमीयत से बलबला जाएं जैसे एक मछली पानी से बाहर निकाले जाने पर मौत–व–हयात की कशमकश से दो–चार हो जाती है। हमारे अंदाज़–ए–गुफ़्तार–ओ–क़रदार से यह बात महसूस होनी चाहिए कि हमारे लिए राशन पानी का बंद किया जाना, या ज़िन्दगी की तमाम मस्नुई व मादी सहूलियतों से महरूम कर दिया जाना हमारे लिए इसके मुकाबले में कोई मानी नहीं रखता कि हम दीन–ओ–शरीअत के किसी एक जुज़ से भी दस्–बरदार होने का इज़हार या इलान करें। मौजूदा हालात में हमारी दीनी व मिली गैरत–ओ–हमीयत का यह सबसे बढ़ कर तक़ाज़ा है।

हज़रत इब्राहीम अ.स. की सीरत तैय्यबा हमें यह बताती है कि उन्होंने इहक़ाक़े हक़ की राह में अपनों और परायों सबसे दुश्मनी मोल ली, दीन–ए–हनीफ़ के ख़िलाफ़ तमाम आवाज़ों को बातिल क़रार दिया, आसमानी तहज़ीब की बहुत खुल कर दावत दी, मुशरिकाना तसव्वुरात पर बड़ी जुरअत के साथ नकीर की, नफ़ा व ज़रर और मौत व हयात किसके हाथ में है? यह सब हक़ायक़ बड़ी वज़ाहत से पेश किए।

जब क़ौम ने उनके अफ़कार व तखय्युलात से इख़तिलाफ़ किया तो उनसे एक फासला बनाया, उनके साथ नशिस्त व बरख़ास्त में परहेज़ किया और अपनी एक अलग दुनिया बसाई। यहां तक कि नौबत आख़री दर्जे की क़ुर्बानी देने वाली आ गई, मगर आपके नज़दीक यह हक़ीक़त सबसे बढ़कर थी कि इस राह में हम हर तरह से जान का नज़राना लिए सीना सपर हैं।

चुनांचे जब आतिशकदा–ए–आज़र में कूदने की घड़ी आई तो बेमिसाल बहादुरी से कूद पड़े मगर अल्लाह ने अपना फ़ज़्ल किया और उन्हें महफ़ूज़ आग से निकाल लिया। राहे खुदा में इहक़ाक़े हक़ का यह वह जज़्बा था जिसके सामने हज़रत इब्राहीम अ.स. ने हार न मानी और जान की बाज़ी लगा दी।

नतीजा यह हुआ कि कुदरत ने एक फ़ितरी चीज़ (आग) की तासीर को सलब कर लिया। फिर जब यह महसूस किया गया कि वही इब्राहीम जो दीन–ए–हक़ की ख़ातिर आग में कूद पड़े थे, कहीं ऐसा तो नहीं कि अब उनके इस जज़्बे पर शफ़क़ते–पिदरी का जज़्बा ग़ालिब आ गया हो, क़ुदरत–ए–खुदावंदी ने यह इम्तेहान भी लिया कि बेटे ही के गले पर छुरी चलाने का हुक्म दे दिया, मगर वह इसमें भी सच्चे और खरे साबित हुए और एक लम्हा भी तज़बज़ुब का शिकार हुए बग़ैर उन्होंने हुक्म की तामील फ़रमाई, जिसके नतीजे में दूसरी मर्तबा यह मोजिज़ा ज़ाहिर हुआ कि फ़ितरी चीज़ (छुरी) की तासीर सलब कर ली गई और अल्लाह ने इसके बदले ष्ज़बह–ए–अज़ीमष की दौलत व नेअमत से नवाज़ा।

इससे यह बात साफ़ मालूम होती है कि अगर आदमी के अंदर जज़्बा सच्चा हो, दीन की उसमें एक फ़िक्र और धुन हो, खुदा की मोहब्बत से बढ़ कर उसके सामने कोई मोहब्बत न हो, शरीअत के तक़ाज़े से बढ़ कर उसके लिए कोई चीज़ अहम न हो और वह इसकी ख़ातिर बड़ी से बड़ी क़ुर्बानी देने का जज़्बा व हौसला रखता हो तो यक़ीनन अल्लाह की मदद शामिल–ए–हाल होती है, सख़्त से सख़्त हालात का धारा बदल जाता है।

हक़ीक़त में यह वह हिमालयी अज़्म व इरादा है जो बड़े–बड़े तूफ़ानों और यूर्शों को अपनी कलाई से मोड़ ही नहीं, मरोड़ देता है। क़ुर्बानी के मस्नून मौक़े पर आज ज़रूरत है उसी अज़्म व हौसले को ज़िंदा करने की, उसी जज़्बे को मौजज़न रखने की और उसी फ़िक्र के साथ आगे बढ़ने की।

वाक़ेअ यह है कि अगर आज भी मुसलमान उसी रूह के साथ मैदान–ए–अमल में आ जाएं तो यक़ीनन यास व नामीदी के बादल छंट जाएंगे, उनके लिए अशिया के ख़वास बदल जाएंगे और दुनिया उनके क़दमों में होगी।

इफ़ादात-ए-हकीमुल-उम्मत (रह०)

अन्दरूनी फ़ायदे के लिए बाहरी मुनासिबत शर्त है:

"रसूल अल्लाह (स०अ०व०) ने फ़रमाया: अरवाह लश्कर के लश्कर हैं जो (आलम–ए–अरवाह में) मुज्तमअ थीं, जिनमें वहाँ आपस में जान–पहचान हुई उन में (यहाँ भी) आपस में उल्फ़त है और जिनमें जान–पहचान नहीं हुई उन में इख़्तिलाफ़–ए–मिज़ाज है।" (अबू दाउद व मुस्लिम)

यह काम तजुर्बे से साबित हो चुका है कि अन्दरूनी फ़ायदे के लिए पीर–ओ–मरीद की बाहमी मुनासिबत फ़ितरी शर्त है। इस हदीस के उमूम में यह मुनासिबत भी दाखिल है, क्योंकि नफ़ा आदतन उल्फ़त पर मौक़ूफ़ है जो मुनासिबत –ए–फ़ितरी की हक़ीक़त है और यही मुनासिबत है जिसके न होने पर मशाइख़ तालिब को अपने पाससे (बाज़ दफ़ा) दूसरे शेख़ के पास जिससे मुनासिबत मज़नून या मक्शूफ़ हो, भेज देते हैं। क्योंकि इस तरीक़े में मुसलह के साथ मुनासिबत होना बड़ी ज़रूरी चीज़ है। बग़ैर मुनासिबत के तालिब को नफ़ा नहीं हो सकता और मुनासिबत–ए–शेख़ (जो अफ़ाज़ह व इस्तिफ़ादा का मदार है) के मानी हैं कि शेख़ से मुरीद को इस क़दर उन्सियत हो जाए कि शेख़ के किसी क़ौल व फ़ेल से मुरीद के दिल में तबई नकीर न पैदा हो, चाहे 'अक़्ली' हो। यानी शेख़ की सब बातें मुरीद को पसन्द हों और मुरीद की सब बातें शेख़ को पसन्द हों और यही मुनासिबत बैत की शर्त है। इसलिए पहले मुनासिबत पैदा करने का एहतिहाम करना चाहिए। इसकी सख़्त ज़रूरत है। जब तक यह न हो मुजाहिदात, रियाज़ात, मुराक़बात, मुकाशफ़ात सब बेकार हैं। कोई नफ़ा न होगा। इसलिए जब तक पूरी मुनासिबत न हो, बैत न करनी चाहिए। जब पूरी तरह राह पर पड़ जाए, ख़ूब मुहब्बत और मुनासिबत हो जाए उस वक्त पीर से बैत ज़्यादा नफ़ाबख़्श है। (अशरफ़–अत–तरीक़ा फ़ीश–शरिया वल हक़ीक़ा: ६१–६२)

फ़रमाया कि सुलूक शुरू करने से पहले ज़रूरत है कि कुछ यौम शेख़ की ख़िदमत में रहे ताकि उसके आदतों व हालात से पूरी पूरी आगाही हासिल हो जाए। क्योंकि यह मारिफ़ते मबादी में से है और जब तक मबादी किसी फन के ज़ेहन में न हों मक़ासिद में चल नहीं सकता। (मलफ़ूज़ात–ए–हकीमुल–उम्मत: ७६)

बैत की हक़ीक़त:पीरी–मुरीदी या बैत–ओ–अरादत की हक़ीक़त व ज़रूरत में बहुत इफ़रात व तफ़रीत से काम लिया गया है। एक तरफ़ इसे सिरे से बाज़ों ने बिदअत समझ रखा है और दूसरी तरफ़ सिर्फ़ एक रस्म बना रखा है कि बस दस्त–बोसी व पांव–पोसी कर ली, खुद कुछ करने करवाने की ज़रूरत नहीं, हालाँकि निरी पीरी–मुरीद में कुछ नहीं रखा। अस्ल काम खुद चलना है और किसी रहबर का हाथ पकड़ना। अगरचे रस्मी मुरीद किसी से भी न हो, यह मतलब नहीं कि सिलसिला में दाख़िल होने से बरकतें कुछ नहीं लेकिन इसे असल उसूल समझना बड़ी गलती है बल्कि असली ग़रज़ और मकसूद सुलूक का रज़ा–ए–हक समझे जिसका तरीक़ अहकाम–ए–शरईय्या का बजा लाना और ज़िक्र पर मुदावमत करना है। शेख़ इसकी तालीम व तलक़ीन करता है और मुरीद इस पर कारआमद होता है, अगरचे कोई कैफ़ियत मालूम न हुआ और न ही कोई कमाल उसके ज़ोम हासिल हो, तब भी आख़िरत में इसका समरा जो कि रज़ा है ज़ाहिर होगा और रज़ा से दुख़ूल–ए–जन्नत व लिक़ाअ–ए–हक़ और दोज़ख़ से नजात मयस्सर होगी और शेख़ की तरफ़ से तलक़ीन का वादा और मुरीद की तरफ़ से इत्तेबा का अहद यही पीरी–मुरीदी की हक़ीक़त है और गोया तालीम बदून–ए–बैत–ए–मुतआरिफ़ा यानी मशहूरह भी मुमकिन है लेकिन ख़ास तौर पर बैत करने में तबअन यह ख़ास्सा है कि शेख़ की तवज्जोह ज़्यादा हो जाती है और मुरीद को पास–ए–फ़र्मां बरदारी ज़्यादा हो जाता है। (अशरफ़–अत–तरीक़ा फ़ीश–शरिया वल हक़ीक़ा : ५२–५३)

मुरत्तिब: मौलाना जमाल मलपा नदवी भटकली

R.N.I. No.
UPHIN/2009/30527

Monthly
ARAFAT KIRAN
Raebareli

Issue: 6 ❈ *June 2025* ❈ Volume: 17

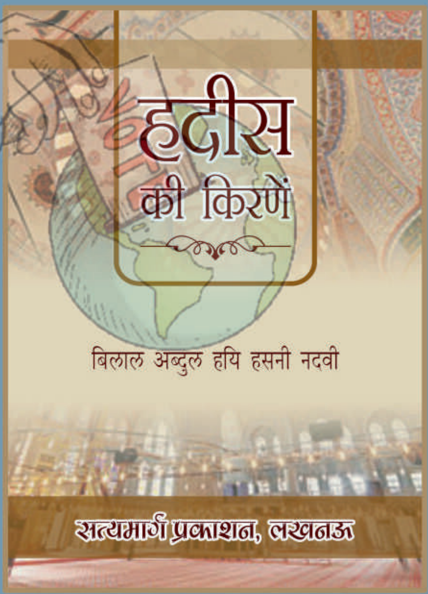

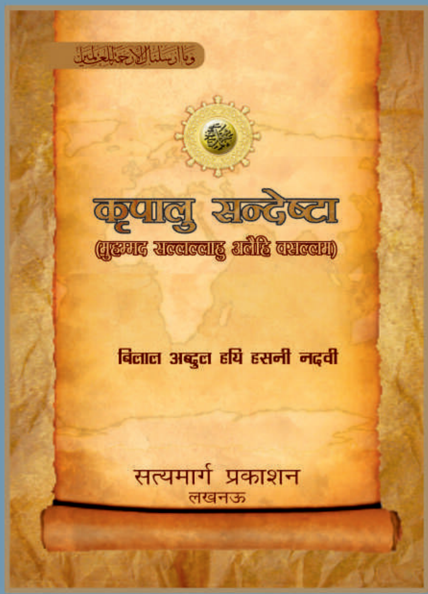

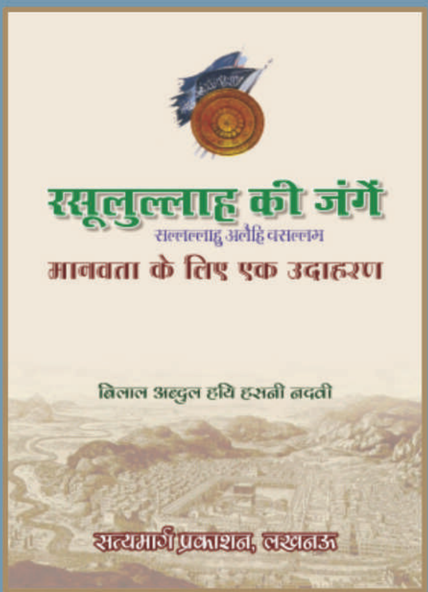

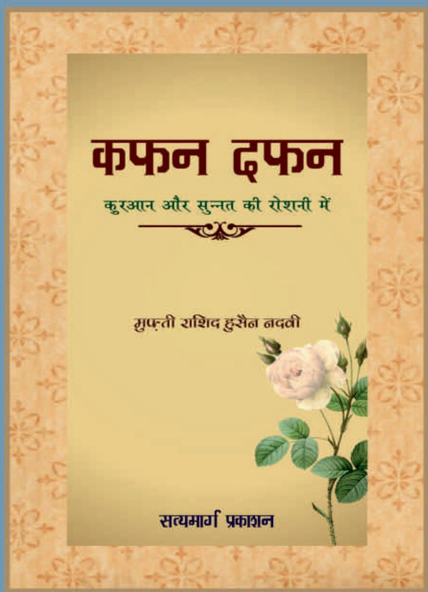

Editor: Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi
MARKAZUL IMAM ABIL HASAN AL-NADWI
Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli, U.P.
Mobile:9565271812
E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

Printed & Published by: Mohammad Hasan Nadwi
On Behalf of: Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi
Printed at S.A. Offset Printers, Masjid ke peeche,Phatak Abdullah Khan, Sabzi Mandi, Station Road, Raebareli, U.P.